❀ महाभगवते श्रीगौरचन्द्राय नमः ❀

❀ श्रीश्रीमथुरामाहात्म्यम् ❀

[श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्]

अर्थसहायक-

श्री प्रभुदयालजी भार्गव, मथुरा।

प्रथमावृत्तिः १०००
श्रीविजयादशमी
संवत् २०१५

प्रकाशकः व अनुवादक-
कृष्णदास,
(कुसुमसरोवर वाले)
(मथुरा)

भज–निताय गौर राधेश्याम।

जप–हरे कृष्ण हरे राम ॥

परमाराध्य, संकीर्त्तन प्रचारक, प्रेममयविग्रह, श्रीराधा-
रमणचरणदासदेव (बड़े बाबाजी) के अनुगत,
नित्यधामगत, श्रीगुरुदेव बाबाजिमहाराज
१०८ श्री बाबा (रामदासजी) के
पुनीत स्मरण में यह ग्रन्थ
समर्पित है।

भूमिका

प्रस्तुत मथुरा-माहात्म्य किम्बा मथुरामहिमा ग्रन्थ के रचयिता श्रीमन्महाप्रभु के मुख्य परिकर, छः गोस्वामियों से एक तम श्री-पादरूपगोस्वामि प्रभु हैं। आपने आदिवाराह–स्कन्द–पद्मपुराणादि नाना शास्त्रों में विस्तृत रूप से वर्णित मथुरामण्डल की महान् महिमा का संक्षेप रूप में सारगर्भ संग्रह करके मथुरा-माहात्म्य नाम से इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि की थी, संक्षेपतः मथुरा-महिमा को ज्ञात कराने में यह एक अद्वितीय ग्रन्थ है। श्रीमन्म-हाप्रभु की नाना पुराण-शास्त्रों के प्रमाण एवं आधार लेकर वृज-मंडल के लुप्त तीर्थों के उद्धार, श्री गोविन्दादिक भगवद् विग्रहों के प्रकाश तथा नाना भक्ति ग्रन्थों के निर्माण करने की आज्ञा श्रीरूप सनातन के प्रति थी। दोनों ने ऐसा ही किया भी। समस्त इतिहास एवं प्राचीन नाना ग्रन्थों के अध्ययन से यह जाना जाता है कि–मथुरामंडल के तीर्थों के पुनरुद्धार के बारे में श्रीरूप-सनातन एवं श्रीनारायण भट्ट ये तीनों गौड़ीय आचार्यों का हाथ है। इन्होंने वृजमंडल के समस्त तीर्थों का पुनरुद्धार करके तत्स-म्बन्धि नाना महत्व पूर्ण ग्रन्थों के निर्माण के द्वारा जगत् का बड़ा भारी उपकार किया। महामहिम नामाजी ने अपने भक्त-माल ग्रन्थ में ऐसा ही कहा है।

श्रीयुक्त नारायण भट्टजी के द्वारा विरचित ब्रज-भक्तिविलास नामक ब्रज सम्बन्धी महान् ग्रन्थ इन बातों का साक्षी है। मथुरा मंडल के नानालुप्त तीर्थों के उद्धार के उपरान्त ही आपने सम्वत्-१६०१ में इसकी रचना की थी। यह ग्रन्थ मुद्रित भी हो गया है। इस अत्यन्त विस्तृत महान् प्रामाणिक ग्रन्थ का सूत्र रूप ही यह मथुरामाहात्म्य ग्रन्थ है। श्रीमन्महाप्रभुजी जब श्रीमथुरामंडल में आये थे, आपने नाना स्थानों में भ्रमण भी किया था, उस समय वहाँ के समस्त तीर्थ लुप्त प्रायः थे, तो भी आपने कुछ

दिग्दर्शन कराते हुए द्वादश बन का भ्रमण किया। ग्यारह बन के भ्रमण के उपरान्त आप बारह संख्यक बन पंच कोसी वृन्दावन में पधारे। वहाँ आपकी श्रीकृष्ण सम्बन्धी जो महान् तीव्र अनुराग दशा हुई उसे कोटि कल्प पर्य्यन्त भी शेषजी वर्णन नहीं कर सकते हैं। कविकर्णपूरजी ने बड़ी गम्भीरता के साथ चैतन्य-चन्द्रोदयनाटक में इसका वर्णन किया है। आप यमुना के चीर-घाट पर जिस वृक्ष के नीचे बैठकर मधुर हरि नाम लेते थे वह एक प्रकांड इमली वृक्ष द्वापरयुग का है और कृष्णलीला से सम्बन्धित है। अभी भी वह वृक्ष मौजूद है। कुछ लोग मत्सरता वश हो आजकल मनमुखी प्रचार करने लग गये हैं कि–"महा-प्रभुजी तो वृन्दावन में आये ही नहीं, वे अक्रूर घाट से ही फिर कर नीलाचल के लिए चले गये थे। क्योंकि उस समय वृन्दावन सिंह, व्याघ्रादि के निवास रूप घोर जङ्गल मय था" इत्यादि। हम इस विषय में खेद प्रकट करते हैं कि इस प्रकार गलत प्रचार से सम्प्रदाय की गौरव वृद्धि नहीं होती। अहो! जिन्होंने वृन्दा-वन के लिए आने के समय मार्ग में झाड़खंड नाम से विख्यात भयानक बनखंड में हजारों सिंह, व्याघ्र, हस्ति, शूकरों को कृष्ण कहा कर नचाया था वे ही प्रभु आज बारह बन से युक्त ब्रज-मंडल में पधार कर पंचकोसी वृन्दावन (बारह संख्यक) को छोड़कर केवल ग्यारह बनों का ही भ्रमण कर अक्रूरघाट से ही लौट गये हैं यह कितना सत्य है ? अस्तु श्रीपादरूपगोस्वामि ने ब्रजमण्डल के तीर्थों को परिचित कराने के लिए इस मथुरा-महिमा ग्रन्थ की रचना की थी। यह समस्त मथुरामण्डल का दिग्दर्शन करने-कराने में दर्पण रूप है।

बहु दिनों से इसको सानुवाद प्रकाशित करने की प्रबल इच्छा थी। आज गुरु-गौराङ्गगण की कृपा-कणिका प्राप्त होने पर ही इस कार्य्य में समर्थ हो सका हूँ।

वैष्णवदासानुदास – कृष्णदास (कुसुमसरोवरवाले)

श्रीमथुरामाहात्म्यस्य विषय-सूची

मथुरा मण्डल सीमा निर्णय

श्री मथुरामण्डल की सीमा शास्त्रानुसार पाँच प्रकार से विभाग की जाती है।

१– पहला विभाग–पञ्चयोजनात्मक अर्थात् बीस कोस परिमित, केवल शुद्ध रस रूप, कमल-पत्र की तरह है। जिसको सब कोई निज वृन्दावन कहते हैं। श्री गोविन्दवृन्दावन नामक बृहद्गौतमीय तन्त्र के तृतीयपटल में कहा गया है––

"किमिदं द्वादशाभिख्यं वृन्दारण्यं विशाम्पते।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि योग्योऽस्मि मे वद॥"

इस प्रकार श्री नारदजी के पूँछने पर श्रीकृष्णजी उत्तर देते हैं कि–– इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्।
अत्र ये पशवः पक्षि-वृक्षाः कीटा नरामराः॥
ये वसन्ति ममाधिष्ठे मृता यान्ति ममालयम्।
योगिन्यस्ता मया नित्यं मम सेवापरायणाः।
पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्।
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी॥

यहाँ इस श्रीवृन्दावन को श्रीकृष्ण ने निज देह रूप कहा है॥

२––दूसरा विभाग–योजन परिमित अर्थात् चार व पाँच कोस परिमित का है। जिसे राजधानी रूप करके कहा जाता है। इसमें श्री वृन्दावन के अधिदेव राजाधिराज गोविन्ददेवजी के सभा-मण्डप, योगपीठ, कल्पवृक्ष के नीचे रत्नसिंहासनादि मोजूद हैं तथा सत्यलोक-छत्र-नारायणादि अवतार आवरण देवता रूप में विराजमान हैं॥

३––तीसरा विभाग–द्वादश गव्यूत्यात्मक अर्थात् चौबीस कोस परिमित है। इसमें बारह बन मौजूद हैं।

आदिवाराह के मथुराखण्ड में कहा गया है--

गव्यूति द्वादशमयी द्वादशारण्यसंयुता ।
तत्रापि मथुरा देवी सर्वसिद्धिविधायनी ॥
शाखामृगगणाकीर्णं नानामृगनिषेवितम् ।
द्वात्रिंशद्वनसंवीतं वैकुण्ठादपि सौख्यदम् ॥

गौतमीयतन्त्र में--

द्वात्रिंशद्वनराजिभि रंजितं सर्वतो मुखम् ।
गोलोकादागतैर्दिव्यैर्वेष्टितं गोगणाष्टकम् ॥

वृहद्गौतमीय में—"प्रययुस्तेऽम्बिकाबनम् ।"
दशम में-"पशव्यं नवकाननं" ।
"नवानि अवान्तराणि काननानि यस्मिन्" इस प्रकार व्याख्याकारों की व्याख्या से बत्तीस वन कहे गये हैं। वे बत्तीस वन इस वृन्दावन के अन्तर्गत हैं ऐसा जानना चाहिए। इस चौबीस कोस परिमित मथुरामण्डल में पद्माकार मथुरामण्डल की कुछ विशेषता है। आदिवाराह में कहा है-

इदं पद्मं महाभागे ! सर्वेषां मुक्तिदायकम् ।
कर्णिकायां स्थितो देवि ! केशवः क्लेशनाशनः ॥
पश्चिमेन हरिं देवं गोवर्द्धननिवासिनम् ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं किं मनः परितप्यसे ॥
उत्तरेण तु गोविन्दं दृष्ट्वा देवं परं शुभम् ।
नासौ पतति संसारे यावदाहूतसंप्लवम् ॥
विश्रान्तिसंज्ञकं देवं पूर्वपत्रे व्यवस्थितम ।
यं दृष्ट्वा तु नरो याति मुक्तिं नास्त्यत्र संशयः ॥
दक्षिणेन तु मां विद्धि प्रतिमां देवरूपिणम् ।
महाकायां स्वरूपां च केशवाकारसन्निभाम् ॥

अर्थात् हे महाभागे ! पद्माकार यह स्थान सबको मुक्ति देने

वाला है इसकी कर्णिकामें केशवभगवान बिराजमान हैं, यहाँ मरने वाले मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। पश्चिम में गोवर्द्धन निवासी भगवान हरिदेवनारायणजी बिराजमान हैं। अरे मन ! उनका दर्शन करने पर भी तू क्यों चिन्तित रहता है ? । उत्तरदिशा में वृन्दावन के राजा श्रीगोविन्ददेव का दर्शन करने पर मनुष्य महा-प्रलयकाल तक भी संसार में नहीं गिरता है। पूर्णपत्र में विश्रांति नामक देवता हैं,जिनके दर्शन से मनुष्य निःसन्देह मुक्ति प्राप्त होता है। दक्षिण में भगवान केशव की अंगकांति की तरह कांतिवाली, महान् शरीर धारिणी, सुन्दररूपवाली मेरी बराहमूर्ति है। जिसका दर्शन करने पर मनुष्य ब्रह्माजी के साथ निवास कर सुख भोग करता है।

४—चौथा विभाग—विंशतियोजनात्मक अर्थात् ८० व ८४ कोस परिमित है। जिसमें समस्त तीर्थ तथा उन समस्त तीर्थों के आविष्कर्त्ता देवता निवास करते हैं। वाराह में कहा है—
'विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम्' इत्यादि। जिस प्रकार कि खंड-खंड मंडलेश्वर एवं वहाँ के अधिकारीगण महाराज के स्थान को घेरकर सेवा करते हैं ठीक उसी प्रकार इस विभाग में समस्त तीर्थ व तीर्थाधिष्ठातृ देवता निवास करते हुए निज वृन्दा-वन की सेवा करते हैं। मथुराखंड में बारह योजन अर्थात् ४८ कोस परिमित करके उल्लेख भी है—

"मथुरामण्डलं तद्धि योजनानां तु द्वादश।
यत्र तीर्थसहस्राणि कृष्णरामकृतानि च ॥"

५--पाँचवाँ विभाग—

त्रिंशद्योजनविस्तारो मथुरायाश्च मंडलः।
यत्र प्राणान् विमुच्यन्ति सिद्धाः यान्ति परां गतिम् ॥

वायुपुराण के वशिष्ठ दिलीप संवाद में भी कहा गया है—

चत्वारिंशद् योजनानां ततस्तु मथुरा स्मृता ।
यत्र देवो हरिः साक्षात् स्वयं तिष्ठति सर्वदा ॥

अर्थात् चालीस योजनात्मक (१६० कोस) पाँचवाँ विभाग है। जिसमें इन्द्र, चन्द्र, कुवेर, वरुणादि अधिकारीगण तथा उनके आविष्कृत तीर्थ समूह मौजूद हैं। इस विभाग से बाहर प्राकृत-सर्ग है ॥

श्रीपादनारायणभट्ट ने भक्तिविवेक ग्रन्थ में कहा है–"तत्र पञ्चधा विभागाः तत्रापि केवलरसरूपः पंचयोजनात्मकः पद्मपत्रवत् श्रीवृन्दावनाख्यः एको विभागः द्वितीयस्तु योजनपरिमितः राजधानीरूपः तमेव सभामण्डप--सिंहासनात्मकं वर्णयन्ति। तत्र सत्यलोकः छत्रं श्रीनारायणाद्यवतारा: आवरणत्वेन स्थिताः। तृतीये द्वादशगव्यूत्यात्मके विभागे ब्रह्मरुद्रादयः। चतुर्थे विंशतियोजनात्मके सर्वाणि तीर्थानि तत्तीर्थाधिष्ठातारश्च निवसन्ति। पंचमे विभागे चत्वारिंशद्योजनात्मके इन्द्राद्यधिकारिणः ततो वहिः प्राकृता इति तत्सर्गः" ॥ यद्यपि

यह पंच विभागात्मक समस्त मथुरामण्डल आनन्द चिन्मय सुख रूप, प्रकृति से पर, दिव्य वैभवस्वरूप, सर्वजीवों के सेव्य, तथा समस्त वैष्णवों के सुख रूप हैं तो भी श्रीवृन्दावन ही शुद्ध रस रूप होने के कारण रसज्ञ जनों के लिए परम उपादेय माना जाता है। यहाँ शुद्धस्वरूप का तात्पर्य-वैभवादि ज्ञान से रहित, दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुररस पोषक रसमयी भूमि है। इस वृन्दावन के अतिरिक्त समस्त मथुरामण्डल वैभव मिश्रित के कारण शुद्ध रस रूप नही माना जाता है। श्रीनारायणभट्ट महोदय ने उक्त भक्तिविवेक ग्रन्थ में बड़ी सरसता के साथ निर्णय दिया कि--"तत्र सर्वेषां वैष्णवानां सर्वोऽपि माथुरो मण्डलः सुखात्मक एव रसज्ञानां तु श्रीवृन्दावनमेव शुद्धरसरूपं अन्यत्र वैभवमिश्रम्"

"तत्रैश्वर्य्यं परिवारः मथुरायां रसपरिवारस्तु श्रीवृन्दावने" इत्यादि। आपने आगे और भी कहा कि 'ततश्चायमर्थः सम्पन्नः-श्रीमथुरा-मण्डलं द्विविधं पद्मात्मकं मंडलं पद्मात् वर्हिमण्डलं च। पद्मात्मके मण्डले द्वादश वनानि, अतएव लोकपरम्परया यात्रा तथैव। वहि-र्मण्डले लोकपालादिभिः रक्षितं ततश्च तरतमभावेन मण्डलेषु विशेषः"।

अर्थात् श्रीमथुरामण्डल दो प्रकार का है, कमलाकार मण्डल तथा उससे वहिर्मण्डल। कमलाकार मण्डल में ही बारह बन मौजूद हैं, अतः लोक परम्परा से उसकी यात्रा होती है। वहिर्मण्डल में लोकपालादिक निवास करते हुए उसकी रक्षा करते हैं॥

आपने आगे और भी कहा है—

"चत्वारिंशद्योजनात्मकाद्विंशतियोजनात्मकः श्रेष्ठः ततो द्वादश गव्यूत्यात्मकः ततोऽपि योजनपरिमितार्द्धचन्द्राकृतिरूपः मथुरा-स्वरूपः। ततोऽपि रहस्यरूपेणोच्यमाने पद्मपत्रात्मकः लोक-वेद-प्रसिद्ध्या विंशतिक्रोशरूपः सर्वरसावधिस्थानं श्रीवृन्दावनमेव। तत्र श्रीराधाकृष्णौ स्वरूपेण तिष्ठतोऽन्यत्र तु अंशेन॥"

अर्थात् १६० कोस परिमित मथुरामण्डल से ८० कोस परिमित मथुरामण्डल श्रेष्ठ है। पुनः ८० कोस परिमित मथुरामण्डल से २४ कोस परमित मथुरा मण्डल श्रेष्ठ है। उसमें एक योजन परिमित अर्द्धचन्द्राकार मथुरामण्डल श्रेष्ठ रूप से विराजमान है। चौबीस कोस रूप मथुरामण्डल से रहस्य रूप करके परिकथित, कमल—पत्रात्मक, लोक वेद करके बीस कोस रूप में प्रसिद्ध, समस्त रसों के अवधीभूत स्थान श्रीवृन्दावन श्रेष्ठ है। उस श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण दोनों स्वरूप में अर्थात् रसमय निज परिपूर्णतम रूप से विराजमान रहते हैं, इस से अतिरिक्त अन्यत्र मथुरामण्डल में अंश रूप में विराजमान हैं।

तात्पर्य्य:—अन्य मण्डलों में श्रीकृष्ण की वैभव-अवस्था का प्राधान्य देखा जाता है। कहीं तो रस मिश्रित वैभव से, कहीं वैभव मिश्र रस से, कहीं शुद्ध वैभव से वा कहीं वान्धवमिश्र वैभव से श्रीकृष्ण परिस्फुरित होते हैं। बीस कोस रूप निज वृन्दावन में केवल निज स्वरूप से अर्थात् वैभव ज्ञान रहित रस-मय विग्रह से विराजमान रहते हैं। श्री नारायणभट्टजी ने ब्रज-भक्तिविलास ग्रन्थ के षष्ठाध्याय के प्रारम्भ में ब्रजमण्डल की मर्य्यादा ८४ कोस रूप में बतलाई है। मथुरा को बीच में रख-कर चार दिशा में इक्कीस कोस परिमाण से सीमा मर्य्यादा दी गयी है। ८४ कोस ब्रज मण्डल पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा के कोण के विचार में चार भाग हैं तथा प्रत्येक भाग २१ कोस परिमित है। पूर्व भाग कोण में हास्यवन, दक्षिण भाग कोण में जन्हुबन, पश्चिम भाग कोण में पर्वतवन, उत्तर भाग कोण में सूर्य्यपतन वन है। इस प्रकार ब्रज की सीमा चतुःष्कोण रूप है यह शिवादि देवताओं का मत है। नारदादि मुनिगण मण्डला-कार रूप से, सनकादि ऋषिगण शृङ्गाराकार रूप से वर्णन करते हैं। इसकी व्याख्या- आदिवाराह में कहा है—हास्यबन एवं जन्हुवन के बीच गोपनबन प्रथम बिश्राम स्थान आग्नेय कोण में है, जन्हु-बन तथा पर्वतबन के बीच गोमयनामक बन द्वितीय बिश्राम स्थान नैऋत कोण में है। पर्वतबन एवं जन्हुबन के बीच कमला बन तृतीय विश्राम स्थान वायव्यकोण में है। सुन्हुबन तथा जन्हुबन के बीच हरिबन चतुर्थ बिश्राम स्थान ईशानकोण में है। प्रदक्षिणा का परिमाण ८४ कोस है, दोनों की प्रत्येक ४२ कोस तिरछे भाव से प्रदक्षिणा प्रमाण है। इस प्रकार तिरछे भाव से प्रदक्षिणा रास्ता ३३६ कोस की है। प्रति ग्राम अढ़ाई कोस प्रद-क्षिणा से ग्रामों की प्रदक्षिणा १२० कोस की है।

भक्तिरत्नाकरग्रन्थ में कहा है–

मथुरामण्डल सीमा यायावर हैते ।
शौकरी बटेश्वर पर्य्यन्त शास्त्र मते ।।

यायावर विप्र नामे यायावर स्थान ।
आदि शूकरेर नाम शौकरी आख्यान ।।

बटेश्वर शिव ये हों सवार पूजित ।
श्री सूरसेनर राज्य सर्वत्र विदित ।।

वराह दशन ह्रद एवे कहये लोकेते ।
यायावर शौकरी प्रसिद्ध पुराणेते ।।

पद्मपुराण के यमुना माहात्म्य में इसका वर्णन है कि–'पहले यायावर नामक जितेन्द्रिय तपस्वी विप्र ने अप्सराओं के रमणीय स्थान पर इन्द्र-शाप से पीड़ित होकर तपस्या की। यह स्थान यायावर विप्रस्थान नाम से प्रसिद्ध है। श्रीयमुना अपने पवित्र जल-कणों से उस विप्र को पातक से मुक्त करती हुई तथा रथ के द्वारा उसे स्वर्गपुरी में पहुँचाती हुई मथुरामण्डल प्राप्त हुई। अनन्तर कुरुदेशों को जो कि शूरसेन राज्य करके प्रसिद्ध है उनको पवित्र करती हुई बारह बन का उल्लङ्घन करके विश्रान्ति तीर्थ में आकर केशव भगवान के वहाँ विश्राम करने लगी। वहाँ वासुदेव से आलिङ्गिता होकर पुनः उनसे आज्ञा लेकर ध्रुवजी के स्थान होकर रेणुकाश्रम (वर्तमान नाम रुणकता) पहुँची। अनन्तर भरताश्रम में जहाँ कि शकुन्तला के अपत्यों ने सात अश्वमेध यज्ञ किए हैं वहां उपस्थित हुई। अनन्तर पश्चिममुखी होकर मथुरापुरी को पवित्र करने लगी। पुनः पूर्वमुखी होकर शूकरक्षेत्र में पहुँची जहाँ कि भगवान् आदि शूकर का जन्म हुआ था।

अनन्तर यमुना पुनः पश्चिममुखी होकर उसकी परिक्रमा करती कुटिलगति से चल कर इष्टकाश्रम जहाँ वशिष्ठजी का महान् मन्दिर है वहाँ पहुँची। इससे—यायावर स्थान से लेकर शौकरी-बटेश्वर पर्य्यन्त मथुरामण्डल की सीमा है ऐसा जानना चाहिए।

श्रीपाद रूपगोस्वामि ने मथुरामाहात्म्य नामक इस ग्रन्थ में पद्म-पुराण के इन श्लोकों को उद्धृत करके शेष में निर्णय दिया कि-

"एतेन यायावरमधिकृत्य शौकरी-बटेश्वरपर्य्यन्त मथुरामण्डलं ज्ञेयम्, एवमेव सर्वासु दिक्ष्वपि तथा ज्ञेयम्। विंशतियोजनात्मके बहुतीर्थवत्तया विशेषः ॥"

श्रीपाद नारायणभट्ट ने ब्रजोत्सवचन्द्रिका नामक ग्रन्थ में बाराह-पुराण का वचन उठाकर पुनः निर्णय दिया कि—

"वाराहे—क्रोशोत्तरं योजनानां पञ्चानामेकविंशतिः।
शुद्धभागं विजानीयात्पञ्चयोजनविस्तृतः॥
पश्चिमे भागमारभ्य पूर्वभागे प्रविस्तृतः।
शुद्धैकविंशतिक्रोशं शुद्धतिर्य्यग्प्रमाणतः॥

काम्यवनादारभ्य गोकुलद्वारं यावच्छुद्धमर्य्यादा। केचिदाचार्य्याः नन्दग्रामादारभ्य गवांपानवाटस्थानपर्य्यन्तं ब्रजस्य शुद्धमर्य्यादां वदन्ति। पादयुक्तपञ्चयोजनमर्य्यादा। एवं तिर्य्यङ्च दक्षिणोत्तरयोः प्रविस्तृतः॥

आदिवाराहे—आश्रमादादिवद्रेश्च परमाख्यातमन्दिरात्।
यमुनातटपर्य्यन्तमेकविंशतिक्रोशकम्॥
चतुर्थांशेन पादेन पञ्चयोजनसंख्यकम्।
पहारी खोहग्रामाच्च सूरसेनस्य ग्रामतः॥
सीमामर्य्यादमाख्या हि प्रमाणं गोपिकाकृतम्।
द्विचत्वारिंशक्रोशेन दशयोजनविस्तृतम्॥"इत्यादि

कृष्णदास

❀ श्री मथुरायै नमः ❀

श्री श्री मथुरा-माहात्म्यम्

हरिरपि भजमानेभ्यः प्रायो मुक्तिं ददाति न तु भक्तिम् ।
विहित-तदुन्नत-सत्रां मथुरे ! धन्यां नमामि त्वाम् ॥१॥
धन्यानां हृदयानन्दपदं संगृह्यते मुदा ।
माहात्म्यं मथुरापुर्य्याः सर्व्वतीर्थशिरोमणेः ॥२॥

तत्रास्याः पापहारित्वं, आदिवाराहे--

विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम् ।
यत्र तत्र नरः स्नातो मुच्यते घोरकिल्वषैः ॥३॥
पदे पदे तीर्थफलं मथुरायां वसुन्धरे !
यत्र तत्र नरः स्नातो मुच्यते सर्व-पातकैः ॥४॥

❀ श्री श्रीगौरांगमहाप्रभुर्जयति ❀

हे मथुरादेवि ! श्रीहरि अपने भजन करने वालों को प्रायः करके मुक्ति प्रदान करते हैं परन्तु वे भक्तिधन का वितरण यत्र तत्र नहीं करते; परन्तु इस प्रकार उस परम दुर्लभ भक्ति यज्ञ के विस्तार करने वाली, अतिधन्य तुमको नमस्कार करता हूँ ॥१॥

मैं समस्त तीर्थशिरोमणि मथुरापुरी की कृतार्थजनों के हृदय में आनन्द देने वाली महिमा का संग्रह करता हूँ ॥२॥

यहाँ पहले इस मथुरापुरी के द्वारा पाप हरण करने का प्रमाण उठाते हैं। आदिवाराह में कहा है:--यह मेरा मथुरा-मण्डल बीस योजन परिमाण का है। यहाँ मनुष्य जहाँ तहाँ स्नान कर भयानक पापों से मुक्त होता है। हे बसुन्धरे! मथुरा में गमनकारी का पद पद पर तीर्थफल लाभ होता है। यहाँ मनुष्य यत्र तत्र स्नान कर भयानक पापों से मुक्त हो जाता है। समस्त

सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम् ।
नरकार्तिहरा देवि ! मथुरा पापघातिनी ॥५॥
कृतघ्नश्च सुरापश्च चौरो भग्नव्रतस्तथा ।
मथुरां प्राप्य मनुजो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥६॥
सूर्योदये तमो नश्येद्यथा वज्रभयान्नगाः ।
तार्क्ष्यं दृष्ट्वा यथा सर्पाः मेघा वातहता यथा ॥७॥
तत्वज्ञानाद् यथा दुःखं सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः ।
तथा पापानि नश्यन्ति मथुरा-दर्शनात् क्षणात् ॥८॥
श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु गत्वा मधुपुरीं नरः ।
ब्रह्महापि विमुच्यते किं पुनस्त्वन्यपातकी ॥९॥
मथुरास्नानकामस्य गच्छतस्तु पदे पदे ।
निराशानि निवर्तन्ते पापान्यस्य शरीरतः ॥१०॥

धर्म से रहित दुरात्म पुरुषों के पापों की नाशिनी तथा नरकपीड़ा को हरण करने वाली देवी श्री मथुरा है। कृतघ्न, सुरापानकारी, चोर, नष्टव्रत वाला मनुष्य श्री मथुरा प्राप्त करके समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है, जैसा कि वज्रपात से समस्त वृक्ष विध्वंसित हो जाते हैं, गरुड़ दर्शन से जिस प्रकार सर्पों की दशा होती है, पवन से आहत होकर मेघगण जिस प्रकार विलीन हो जाते हैं, तत्वज्ञान से जैसा दुःख नाश हो जाता है तथा सिंह का दर्शन कर मृगगण जिस प्रकार पलायन करते हैं, ठीक उसी प्रकार पाप समूह मथुरा दर्शन से तत्क्षण ही नाश हो जाते हैं। ब्रह्मघाती मनुष्य भी यदि श्रद्धापूर्वक भक्तियुत होकर मथुरा गमन करता है तो वह विमुक्त हो जाता है फिर अन्य पातकी के विषय में क्या कहना है। मथुरा में स्नान की कामना करने वालों के तथा पद पद में गमनकारी के शरीर से दुराशारूप पाप समूह नाश हो जाता है।

आनुषङ्गेण गच्छन् हि वाणिज्येनापि सेवया ।
मथुरा-स्नानमात्रेण पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥११॥
नामानि गृह्णतामस्याः सदैव त्वेनसः क्षयः ।
सदा कृतयुगञ्चात्र सदा चैवोत्तरायणम ॥१२॥
यः शृणोति वरारोहे माथुरं मम मण्डलम् ।
अन्येनोच्चारितं शश्वत् सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥१३॥
त्रिरात्रमपि ये तत्र वसन्ति मनुजा शुभे ।
तेषां पुनन्ति सततं स्पृष्टाश्चरणरेणवः ॥१४॥

पाद्मे पातालखण्डे हरगौरीसंवादे--

कृष्णक्रीडाकरं स्थानं यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्या मधुपुरी यत्र सर्व्वपापप्रणाशिनी ॥१५॥

वाणिज्यादि आनुसंगिक कार्य्य में आकर मथुरा-स्नान मात्र से ही पापों को छोड़कर स्वर्ग गमन करता है। मथुरा नाम लेने वालों का निरन्तर पाप क्षय हो जाता है, इस मथुरा मण्डल में सर्वदा सत्ययुग प्रवर्त्तमान रहता है यहाँ तो सर्वदा उत्तरायण मौजूद है। तात्पर्य यह कि उत्तरायण में मरने वालों की सद्-गति होती है। यहाँ किसी समय असद्गति नहीं है। हे वरारोहे! जो मेरे मथुरा मण्डल का नाम-यश श्रवण करता है वह निरंतर पापों से विमुक्त होता है। हे शुभे! जो मनुष्य उस मथुरा में तीन रात्रि भी वास करते हैं उनके चरणरेणु परम पवित्र होते हैं ॥३-१४॥

पद्मपुराण के पातालखण्ड में हर-गौरी संवाद में वर्णन है कि यमुना का तट परम पवित्र तथा श्रीकृष्ण की क्रीड़ा स्थली है। जहाँ समस्त पापनाशिनी, परम पवित्रा मधुपुरी विराजमान है। जिस प्रकार अग्निकण तृणराशि को जला देते हैं ठीक

यथा तृण-समूहन्तु ज्वलयन्ति स्फुलिङ्गकाः ।
तथा महान्ति पापानि दहते मथुरापुरी ॥१६॥

स्कान्दे काशीखण्डे-

हृद्यं मधुवनं प्राप्य यमुनायास्तटे महत् ।
आद्यं भगवतः स्थानं यत्पुण्यं हरिमेधसः
पापोऽपि जन्तुस्तत्प्राप्य निष्पापो जायते ध्रुवम् ॥१७॥

अथ पुण्यप्रदत्वं आदिवाराहे-

यत्पुण्यमश्वमेधेन यत्पुण्यं राजसूयतः ।
मथुरायां तदाप्नोति त्रिरात्रशयनाद्यमी ॥१८॥
विंशतिर्योजनानान्तु माथुरं मम मण्डलम् ।
पदे-पदेऽश्वमेधीयं पुण्यं नात्र विचारणा ॥१९॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां यः स्यात् सुकृतसञ्चयः ।
ततोऽधिकतरः प्रोक्तो माथुरे मम मण्डले ॥२०॥

उसी प्रकार मथुरापुरी महान् पापों को विध्वंसित कर देती है ॥ १५-१६ ॥

स्कन्धपुराण के काशीखण्ड में भी कहा गया है कि यमुना के तट पर मनोहर, भगवान के आदिस्थान, परम पवित्र, पापहारी मधुवन को प्राप्त होकर पापी जन्तु भी निश्चय निष्पाप हो जाता है ॥१७॥

अब मथुरा के पुण्यप्रद गुण का वर्णन करते हैं:-

अश्वमेध यज्ञ के द्वारा जो पुण्य होता है तथा राजसूय यज्ञ से जो पुण्य है, मथुरा में केवल त्रिरात्रि संयमपूर्वक वास करने से वह उसी पुण्य को प्राप्त करता है। वह मेरा माथुर-मण्डल बीस योजन का है। वहाँ पद-पद पर अश्वमेध सम्बन्धी पुण्य-लाभ होता है, इसमें कोई सन्देह न करें। समस्त तीर्थों के

चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनेन यत् ।
तत्पुण्यं जायते पुंसां मथुरां वदतां सताम् ॥२१॥

स्वोद्भवपापहारित्वं आदिवाराहे—

अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति ।
तीर्थे तु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥२२॥
मथुरायां कृतं पापं मथुरायां प्रणश्यति ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यत्पापं समुपार्जितम् ॥२३॥
सुकृतं दुष्कृतं वापि मथुरायां प्रणश्यति ।
यत्र कृष्णेन संचीर्णं क्रीड़ितञ्च यथा सुखम् ॥२४॥
चक्राङ्कितपदा तेन स्थाने ब्रह्ममये शुभे ।
एषा दिव्यपुरी देवि नित्यकालं सुगोपिता ॥२५॥

स्नान से जो सुकृति राशि होती है, उससे अधिकाधिक सुकृत मेरे मथुरा-मण्डल के लिये कहा गया है। चारि वेदों के अध्ययन से जो पुण्य होता है, वह पुण्य "मथुरा" इस प्रकार बोलने वाले सज्जनों को होता है ॥१८-२१॥

अब अपने में उत्पन्न होने वाले पापों के नाश का वर्णन करते हैं:—

अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थ प्राप्त होने पर नाश हो जाता है तथा तीर्थ में जो पाप किया जाता है, वह वज्रलेप हो जाता है, परन्तु मथुरा में जान कर हो किम्वा अनजान में हो, जो पाप उपार्जित होता वह मथुरा में ही नाश हो जाता है। सुकृति दुष्कृति दोनों मथुरा में नाश होती हैं। ब्रह्मरूप परम पवित्र स्थान यहाँ श्रीकृष्ण ने यथा सुख क्रीड़ा व चक्रादि चिन्हित चरणों से विचरण किया था। हे देवि ! यह दिव्य पुरी त्रिकाल में भी विराजमान परम गोप्य है। हे पृथिवि ! तुम मेरी भक्त तथा शिष्या हो, इसलिये मैंने तुमसे यह कहा है; महान् आत्मा वाले ब्रह्मा को भी मैंने इसका रहस्य नहीं सुनाया है। मैंने

भक्ता त्वं मम शिष्या च कथिता ते वसुन्धरे ।
न मया कथितं देवि ब्रह्मणश्च महात्मनः ॥२६॥
रुद्रस्य न मयापूर्वं कथितं च वसुन्धरे ।
मया सुगोपितं ह्येतद्गुह्याद् गुह्यतरं परम् ॥२७॥

पाद्मे पातालखण्डे—

वहु जन्मानि पापानि संचितानि निवर्तयेत् ।
मथुराप्रभवं पापं नश्यति क्षणमात्रतः ॥२८॥

वायुपुराणे—

मथुरायां कृतं पाप मथुरायां प्रणश्यति ।
धर्मार्थकाममोक्षार्थं स्थित्वा तत्र लभेन्नरः ॥२९॥

प्रारब्धपापहारित्वम् पाद्मे पातालखण्डे—

अन्यत्र दशभिर्वर्षैः प्रारब्धं भुज्यते तु यत् ।
किल्विषं तन्महादेवि माथुरे दशभिर्दिनैः ॥३०॥

रुद्रजी को भी इसका रहस्य पूर्व में नहीं कहा । हे वसुधे ! यह मथुरापुरी गुह्य से भी गुह्य है । मैंने इसका निरन्तर गोपन किया है ॥२६—२७॥

पद्मपुराण के पाताल खण्ड में ऐसा कहा है:—बहु जन्मों के सञ्चित पाप-समूह नाश होने के लिये मथुरा में उदय होने पर क्षण मात्र में नाश हो जाते हैं ॥२८॥

वायु-पुराण में कथन है:—मथुरा में किया हुआ पाप मथुरा में ही नाश हो जाता है । मनुष्य मथुरा में रह कर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का लाभ करता है ॥२९॥

अब प्रारब्ध-पापहारित्व का वर्णन करते हैं—अन्यत्र दस वर्षों में जो प्रारब्ध भोगा जाता है, हे महादेवि ! वही प्रारब्ध-पाप मथुरा-मण्डल में दस दिन भोगने पर पूरा हो जाता है ॥३०॥

अथ सर्व्वतीर्थाधिकत्वं आदिवाराहे-

न विद्यते च पाताले नान्तरीक्षे न मानुषे।
समं तु मथुराया हि प्रियं मम वसुन्धरे ॥३१॥

तत्र श्रीधरणीप्रश्न:-

नैमिषं पुष्करं चैव पुरीं वाराणसीं तथा।
एतान् हित्वा महाभाग ? मथुरां किं प्रशंससि ॥३२॥

श्री वराहदेवोत्तरम्-

मथुरेति सुविख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम।
सुरम्या च सुशस्ता च जन्मभूमि: प्रिया मम ॥३३॥
सर्व्वेषां देवतीर्थानां माथुरं परमं महत्।
कृष्णेन क्रीडितं यत्र तच्च शुद्धं पदे पदे ॥३४॥

अब मथुरा के समस्त तीर्थों से आधिकत्व का वर्णन करते हैं। आदिवाराह में कहा गया है-हे वसुन्धरे ! मथुरा के समान मेरे प्रियकर स्थान न पाताल में है, न आकाश में, न मनुष्य-लोक में है। इस पर धरणीदेवी का प्रश्न है—हे महाभाग ! जब नैमिसार, पुष्कर, वाराणसी आदि पवित्र तीर्थ-समूह विराजमान हैं तब आप इन्हें त्याग कर मथुरा की प्रशंसा क्यों करते हैं ? वाराह भगवान उत्तर देते हैं—"मथुरा" इस नाम से सुविख्यात मेरा परम क्षेत्र है। वह परम मनोहरा तथा अत्यन्त कीर्त्तिशाली है। वह मेरी जन्मभूमि परम प्रियकर है। समस्त देवतीर्थों से परम महत् मथुरा मण्डल है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रीड़ा की है तथा जो पद-पद में परम पवित्र है। श्रीकृष्ण के चक्राङ्कित चरणों से वह सर्व्वत्र चिन्हित है। श्रीकृष्ण ने गोपों के साथ जहाँ जो बाल-क्रिड़ाएँ कीं, वहाँ महर्षियों ने तीर्थरूप से स्थापित कर उन्हें प्रसिद्ध किया। हे सुव्रते ! मैंने यह सदुत्तम,

चक्राङ्कितं हि तत्सर्वं कृष्णस्यैव पदेन तु ।
बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः ॥३५॥

यानि तीर्थानि तान्येव स्थापितानि महर्षिभिः ।
एतत्ते कथितं सारं मया सत्येन सुव्रते ! ।
न तीर्थं मथुराया हि न देवः केशवात्परः ॥३६॥

वाराहे-

शृणु तत्वेन मे भूमि कथ्यमानमथोऽनघे ।
मथुरेति सुविख्याता यस्मिन्क्षेत्रे प्रिया मम ॥३७॥
सुरम्या च प्रसन्ना च जन्मभूमिर्मम प्रिये ।
भविष्यति वरारोहे द्वापरे संस्थिते युगे ॥३८॥
ययातिनृपवंशे च उत्पत्स्यामि वसुन्धरे ।
शतानि पञ्चवर्षाणां यत्र स्थास्यामि निश्चयः ॥३९॥

स्कान्दे मथुराखण्डे नारदवाक्यम्-

शृणु धर्मं महाप्राज्ञ यत्त्वं पृच्छसि सर्ववित् ।
गोप्यं सप्तपुरीणान्तु मथुरामण्डलं स्मृतम् ॥४०॥

परमसार वचन कहा है। न मथुरा से बढ़ कर कोई तीर्थ है, न केशव से बढ़कर अन्य कोई देवता है ॥३१-३६॥

वाराह में कहा गया है-हे निष्पाप वसुधे ! सुनो, इस परम तत्व का वर्णन करता हूँ। जिस क्षेत्र में "मथुरा" इस नाम से अति विख्यात मेरी परम प्रियकर भूमि है, वह अत्यन्त सुरम्य तथा प्रसन्नरूपा है, हे प्रिये ? वह मेरी जन्तभूमि है। हे वरारोहे ! द्वापर युग में जिसका वैभव फैलेगा। ययाति राजा के वंश में मैं उत्पन्न होकर एक सौ पाँच वर्ष तक पृथ्वी पर विराजमान रहूँगा, यह निश्चय वचन है ॥३७-३९॥

त्रिंशद् वर्ष सहस्राणि त्रिंशद् वर्ष शतानि च।
यत्फल भारते वर्षे तत्फलं मथुरां स्मरन् ॥ ४१ ॥

तथाह्यादिवाराहे—

महामाध्यां प्रयागे च यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने दिने ॥ ४२ ॥
कार्तिक्यां चैव यत्पुण्यं पुष्करे तु वसुन्धरे।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने दिने ॥ ४३ ॥
सन्निहित्यां तु यत् पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां जितेन्द्रियः ॥ ४४ ॥
पूर्णे वर्ष सहस्रे तु वाराणस्यान्तु यत्फलम्।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां क्षणेन हि ॥ ४५ ॥

तथाहि पाद्मे पातालखण्डे—

पूर्णे वर्षे सहस्रे तु तीर्थराजेषु यत्फलम्।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने दिने ॥ ४६ ॥

स्कन्ध पुराण के मथुरा-खण्ड में नारदजी का वाक्य है कि हे महा बुद्धिमान धर्म्म! सुनो, सर्व्वज्ञ तुमने जो पूछा है, सात पुरियों के मध्य में मथुरा-मण्डल गोप्य है। इस भारतवर्ष में तीस हजार वर्ष व तीस सो वर्ष रहने पर जो फल मिलता है वह फल मथुरा का स्मरण मात्र से होता है ॥ ४०-४१ ॥

आदि वाराह में कहा है हे देव! महान माघ महीना में प्रयाग में रहकर मनुष्य जो जो फल प्राप्त करता है वह फल मथुरा में हर दिवस मिलता है। हे वसुन्धरे! कार्तिक मास में पुष्कर तीर्थ में जो फल प्राप्त है वह फल मथुरा में प्रतिदिन मिलता है। राहु के द्वारा सूर्य ग्रसित होने पर जो पुण्य लाभ होता है वह मथुरा में जितेन्द्रिय मनुष्य को लाभ है। हे देवि! पवित्र हजार वर्ष में वाराणसी में जो पुण्य लाभ है वह फल मथुरा में क्षण

गोदावरी द्वादशको नरो यत् क्षेत्रे कुरूणां क्षितिदायको यः।
षन्मासकान् साधयते गयायां समं भवेन्नो दिनमेकं माथुरम् ॥ ४७
न द्वारका काशी काञ्ची न माया गदाधरो यस्य समं न तीर्थम्।
सन्तर्पिता यद्यमुनाजलेन वाञ्छन्ति नो वै पितरः पिण्डदानम्॥४८

तत्रैवोत्तरखण्डे--

मथुरायां प्रकुर्वन्ति पुरी-साधारणीदृशम्।
ये नरास्तेऽपि विज्ञेयाः पापराशिभिरन्विताः ॥ ४९ ॥
श्रीकृष्णाख्यं परं ब्रह्म यत्र क्रीडति सर्व्वतः।
तदन्याखिलतीर्थेभ्योऽधिकं यत्तत् किमुच्यते ॥ ५० ॥

निर्वाणखण्डे च--

तां पुरीं प्राप्य मथुरां मदीयां सुरदुर्लभाम्।
खञ्जो भूवान्धको वापि प्राणानेव परित्यजेत् ॥ ५१ ॥

काल निवास से प्राप्त हैं ॥ ४२-४५ ॥

पद्मपुराण के पाताल खण्ड में कहा है:-हे देवि! पवित्र हजार वर्ष में तीर्थराज प्रयाग में जो फल है वह फल मथुरा में प्रति दिवस मिलता है ॥ ४६ ॥

गोदावरी में बारह वर्ष पर्य्यन्त, कुरुक्षेत्र में बहु दिन यावत तथा गया में छः मास पर्य्यन्त रहकर जो फल प्राप्त करता है वह फल मथुरा में एक दिवस प्राप्त फल के समान नहीं है। जमुना जल में सन्तर्पण करने वाले मनुष्यों के पितृगण तृप्त होकर पुनः पिण्डदान नही चाहते हैं ॥ ४७-४८ ॥

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में कथन है कि-जो मनुष्य मथुरा में रहकर साधारण भावना रखते हैं वे सब पाप राशियों से युक्त हैं ऐसा जानना। अन्य समस्त तीर्थों से मथुरा अधिक है इस विषय में तो क्या कहना है, परन्तु देखिये जहाँ पर श्रीकृष्णनाम-

पाद्मे पातालखण्डे-

न दृष्टा मथुरा येन दिदृक्षा यस्य जायते ।
यत्र तत्र मृतस्यास्य माथुरे जन्म जायते ॥ ५२ ॥

अथासंख्यतीर्थाश्रयत्वं आदिवाराहे--

षष्टिकोटि-सहस्राणि षष्टिकोटि-शतानि च ।
तीर्थसंख्या तु वसुधे मथुरीयां मयोदिता ॥ ५३ ॥

स्कान्दे मथुराखण्डे--

भूमे रजांसि गणना कालेनापि भवेन्नृप ! ।
माथुरे यानि तीर्थानि तेषां संख्या न विद्यते ॥ ५४ ॥

अथ निवासोपदेशः पाद्मे पातालखण्डे--

कुरु भोः कुरु भो वासं माथुरीयां पुरीं प्रति ।
यत्र गोप्यश्च गोविन्दस्त्रैलोक्यस्य प्रकाशकः ॥ ५५ ॥

धारी ब्रह्म स्वय निरन्तर क्रीड़ा करते हैं ॥ ४९-५० ॥

निर्व्वाण खण्ड में भी कहा है-देव-दुर्लभ, मेरी उस मथुरा-पुरी को प्राप्त होकर अन्धा हो अथवा खञ्ज (लँगड़ा) होकर भी जो प्राण का परित्याग करता है तो उसकी उत्तम गति होती है ॥ ५१ ॥

पाताल खण्ड में कहा गया है-जिसने मथुरा नहीं देखी अथवा देखने के लिए इच्छा होती है उसके जहाँ तहाँ मरण हो जाने पर भी मथुरा में ही जन्म होता है ॥ ५२ ॥

अब मथुरा असंख्य तीर्थों के आश्रय स्वरूप है इस विषय का वर्णन करते है। आदि वाराह में कहा है-हे वसुधे ! षाठ कोटि हजार अथवा षाठ कोटि सौ तीर्थ मथुरा में मौजूद हैं ऐसा मैंने कहा है ॥ ५३ ॥

स्कन्धपुराण के मथुराखण्ड में कथन है-हे राजन् पृथिवी रज की गणना समय पर हो सकती है परन्तु मथुरा में जितने

रे रे संसारमग्नाद्य शिक्षामेकां तु मे शृणु।
यदीच्छसि सुखं सान्द्रं वासं कुरु मधोः पुरे ॥ ५६ ॥
यदीच्छेः पारसंसारं वहित्रं माथुरं कुरु।
नौका सा प्रेरकः कृष्णो भो शिवे ! पारकारकः ॥ ५७ ॥
अहो लोको महानन्धो नेत्रयुक्तो न पश्यति।
माथुरे विद्यमानेऽपि संसृतिं भजते सदा ॥ ५८ ॥
मानुषीं योनिमतुलां लब्ध्वा भाग्यस्य योगतः।
वृथैवायुर्गतं तेषां न दृष्टा माथुरी पुरी ॥ ५९ ॥

आदिवाराहे-

अहो मतेः सुदौर्वल्यमहो भाग्यस्य दौविर्धम्।
अहो मोहस्य महिमा मथुरा नैव सेव्यते ॥ ६० ॥

तीर्थ हैं उनकी संख्या नहीं है ॥ ५४ ॥

अब मथुरा मण्डल में निवास करने का उपदेश वर्णन किया जाता है। पद्मपुराण के पाताल खण्ड में कथन है-अहो मनुष्यगण ! हे मनुष्यगण ! मथुरापुरी में वास कीजिये, जहाँ गोपियाँ तथा तीन लोक के प्रकाशक श्रीगोविन्द बिराजमान हैं। अरे अरे संसार निमग्न मनुष्यगण ! आज मेरी एकान्त शिक्षा का श्रवण करो, यदि निविड़ सुख को चाहते हो तो मधुपुरी में निवास करो। यदि संसार सागर को पार होने की इच्छा रखते हो तो मथुरा मण्डल को नाव रूप जान लो। भो शिवे ! वह मथुरा मण्डल नाव रूप है तथा उसको चलाने वाला अथवा पार कराने वाले श्रीकृष्ण हैं। अहो मनुष्य सब नेत्रवान होकर भी अन्धे माने जाते हैं, क्योंकि मथुरामण्डल के विद्यमान रहने पर भी निरन्तर आवागमन करते रहते हैं। वे सब भाग्यवश अतुलनीय मनुष्य योनि प्राप्त हुए हैं, परन्तु उनके आयु वृथा बीत रहा है, क्योंकि उन्होंने मथुरापुरी का दर्शन नहीं किया ॥ ५५-५६

सापदं सम्पदं ज्ञात्वा सापायं कायमुच्चकैः ।
चपलां चापलञ्चैव दृष्ट्वा मत्पुरीमाश्रयेत् । ६१ ॥

स्कान्दे मथुरा खण्डे—

तत्रैव भवतां बन्धुः पाण्डवानां सुहृत्सखा ।
सात्वतानां प्रियः साक्षाद्यादवानां कुलेश्वरः ॥ ६२ ॥
कृष्णः कमलपत्राक्षः सोऽवतीर्णो युधिष्ठिर ! ।
रामेण सह देवक्यां वसुदेवगृहोत्तमे ॥ ६३ ॥
तस्य कर्माण्यनेकानि परिगीतानि सूरिभिः ।
जातानि माथुरे देशे तां पुरीं को न सेवते ॥ ६४ ॥

अतएव आदिवाराहे--

मथुराञ्च परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते रतिम् ।
मूढ़ो भ्रमति संसारे मोहितो मम मायया ॥ ६५ ॥

आदि वाराह में कहा है--अहो उनमें यह दुर्बलता है, अहो उनके मन्द भाग्य है, अहो उनको यह महान् मोह है कि वे मथुरामण्डल की सेवा नहीं करते है। विपत्तियों को सम्पद्, शरीर का अनित्य, चपला अर्थात् स्त्री को क्षणस्थायी जान कर मेरी पुरी का आश्रय करें ॥ ६०-६१ ॥

स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में कहा है-हे युधिष्ठिर ! उस मथुरा में आप सब पाण्डवों के साक्षात् सुहृत्, सखा, सात्वतों के प्रिय, यादव कुल के ईश्वर, कमल नयन वे श्रीकृष्ण, बलरामजी के साथ वसुदेवजी के उत्तम गृह में देवकी के गर्भ से अवतीर्ण हुए। उनके अनेक चरित्र हैं जिन्हें मुनियों ने गाया है। उस मथुरापुरी की कौन सेवा नहीं करता है ? अतएव आदिवाराह में कहा है-मथुरा का परित्याग कर जो अन्यत्र रति करता है वह मूढ़ है जो कि संसार में मेरी माया से मोहित होकर भ्रमण करता है। स्कन्धपुराण के मथुराखण्ड में भी ऐसा कहा है-जो

स्कान्दे मथुराखण्डे--

मथुरामपि सम्प्राप्य योऽन्यत्र कुरुते स्पृहाम् ।
दुर्बुद्धिस्तस्य किं ज्ञानमज्ञानेन विमोहितः ॥ ६६ ॥

अथ अगतिगतित्वमादिवाराहे--

मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजबन्धुभिः ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां मधुपुरी गतिः ॥ ६७ ॥
पापराशिभिराक्रान्ता ये दारिद्र्यपराजिताः ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां मधुपुरी गतिः ॥ ६८ ॥
ये च योगपरिभ्रष्टा ये तपोदानवर्ज्जिताः ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां मधुपुरी गतिः ॥ ६९ ॥
श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचार-विवर्ज्जिताः ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां मधुपुरी गतिः ॥ ७० ॥
पदे पदे समाक्रान्ता ये विपद्भिरहर्निशम् ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां मधुपुरी गतिः ॥ ७१ ॥

मथुरा प्राप्त होकर अन्यत्र रति-स्पृहा रखता है वह दुर्बुद्धि वाला है उसका ज्ञान क्या कर सकेगा ? वह तो अज्ञान से विमोहित है ॥ ६२-६६ ॥

अब मथुरा अगति की गति है इसका वर्णन करते हैं:— आदिवाराह में—जो माता-पितादि से परित्यक्त हैं, जिन्हें अपने बन्धुओं ने भी त्याग किया तथा जिनकी कहीं पर भी गति नहीं है उनको गति मधुपुरी है। जो पापराशि से आक्रान्त है, जो दारिद्र्यपरायण है जिनकी कहीं भी गति नहीं है उनको गति मधु-पुरी है। जो योगभ्रष्ट हैं, जो तपस्या, दान वर्ज्जित हैं जिनकी कहीं भी गति नहीं है उन सबकी मथुरापुरी गति है। जो वेद, शास्त्र विहित धर्म्म से रहित हैं तथा पवित्रता सदाचार क्रिया वर्ज्जित है, जिनकी कहीं भी गति नहीं है उन सबकी गति मधु-

सारात्सारतरं स्थानं गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
गतिमन्वेषमाणानां मथुरा परमा गतिः ॥ ७२ ॥

अथ नित्यहरिसन्निधानत्वम्, आदिवाराहे —

मथुरायाः परं क्षेत्रं त्रैलोक्ये नहि विद्यते ।
यस्यां वसाम्यहं देवि मथुरायां तु सर्वदा ॥ ७३ ॥

मथुराखण्डे —

अहो हि मथुरा धन्या यत्र सन्निहितो हरिः ।
सर्वेषां यत्र पापानां प्रवेशोऽपि न विद्यते ॥ ७४ ॥

तथाहि पाद्मे पातालखण्डे—

अहो मधुपुरी धन्या यत्र तिष्ठति कंसहा ।
तत्र देवो मुनिः सर्वे वासमिच्छन्ति सर्वदा ॥ ७५ ॥

पुरी है। जो पद-पद में निरन्तर विपदों से समाक्रान्त हैं, जिनकी कहीं गति नहीं है उन सबको गति मधुपुरी है। सार से सारतर, गुह्यों से उत्तम स्थान, गति ढूँढ़ने वालों की परमागति मथुरा है ॥ ६७-७२ ॥

अब—मथुरा हरि के नित्य सन्निधानत्व का वर्णन करते हैं- आदिवाराह में कहा है—हे देवि ! मथुरा से दूसरा क्षेत्र तीनों लोक में नहीं है, उस मथुरा में मैं निरन्तर वास करता हूँ ॥ ७३

मथुरा खण्ड में कहा है:-अहो मथुरापुरी परमधन्या है जहाँ श्रीहरि बिराजमान हैं तथा सर्वदा जहाँ समस्त पापों का प्रवेश नहीं है ॥ ७४ ॥ पद्मपुराण के पातालखण्ड में उल्लेख है कि अहो मधुपुरी धन्य है जहाँ कंसनाशन श्रीहरि विराजमान हैं तथा वहाँ देवता मुनि सब निरन्तर वास करने की इच्छा करते हैं ॥ ७५ ॥ श्रीमद्भागवत के प्रथम—स्कन्ध में भी कहा है- अहो ! निश्चय यादव के कुल प्रसंशनीय हैं, अहो मधुवन पुण्यतम है इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि जहाँ यह पुरुष श्रेष्ठ,

श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे—
अहो अल श्लाघ्यतमं यदोः कुलं अहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चंक्रमणेन चाञ्चति ॥ ७६
चतुर्थस्कन्धे श्रीध्रुवं प्रति नारदवाक्यम्—

तत्तात ! गच्छ भद्रन्ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥७७॥

श्री दशमे—

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम् ।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ।७८॥

श्री विष्णुपुराणे प्रथमे अंशे—

हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मथुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥७६॥
यत्र वै देवदेवस्य सान्निध्यं हरिमेधसः ।
सर्वपापहरे तस्मिंस्तपस्तीर्थे चकार सः ॥८०॥

लक्ष्मीपति जन्म से लेकर जहाँ चल फिरकर क्रीड़ा करते हैं ॥ ७६

चतुर्थ स्कन्ध में ध्रुव जी के लिये नारद जी का वचन है—हे वत्स ! परम पवित्र यमुना के तट पर जाओ, तुम्हारा परम कल्याण होगा, जहाँ पवित्र मधुवन है जिसमें कि श्री हरि कि नित्य स्थिति है ॥७७॥

दशम में—अनन्तर वह मथुरा समस्त यदु राजाओं की राजधानी होने लगी, जहाँ श्री हरि की नित्य स्थिति है ॥७८॥

विष्णु पुराण के प्रथमांश में है कि श्रीशत्रुघ्न ने मधुपुत्र, महाबलवान लवणासुर को मार कर मथुरा नामक पुरी को बसाया जहाँ देवदेव श्री हरि के नित्य सान्निध्य है। उनने समस्त पाप विनाशी उस मथुरा तीर्थ में तपस्या का स्थान बनाया है ॥ वायुपुराण में भी कथन है। चालीस योजन विस्तृत मथुरा

वायु पुराणे-

चत्वारिंशद्योजनानां ततस्तु मथुरा स्मृता ।
यत्र देवो हरिः साक्षात् स्वयं तिष्ठति सर्वदा ॥८१॥

अथ श्रीभगवतः कृपालभ्यत्वमादिवाराहे-

न तत्पुण्यैर्न तद्दानैर्न तपोभिर्न तज्जपैः ।
न लभ्यं विविधैर्यज्ञैर्लभ्यं मदनुभावतः ॥८२॥
श्री विष्णोः कृपया नूनं तत्र वासो भविष्यति ।
विना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति ॥८३॥

पाद्मोत्तरखण्डे-

हरौ येषां स्थिराभक्तिर्भूयसी येषु तत्कृपा ।
तेषामेव हि धन्यानां मथुरायां भवेद्रतिः ॥८४॥

अथ श्रीभगवद्ध्यानादिलभ्यत्वम् पाद्मे निर्वाणखण्डे-

यदा विशुद्धास्तप आदिना जनाः शुभाश्रया ध्यानधना निरंतरम् ।
तदैव पश्यन्ति ममोत्तमां पुरीं न चान्यथा कल्पशतैर्द्विजोत्तम ! ।८५

कही जाती है, जहाँ देव देवेश्वर श्री हरि स्वयं साक्षात् रूप में निरन्तर विराजमान हैं ॥७६-८१॥

अब भगवान की कृपा से ही प्राप्त होती है इसका वर्णन करते हैं आदिवाराह में कहा है :—

वह मथुरा मण्डल न पुण्यों से, न दानों से, न तपस्या-जपों से तथा न विविध यज्ञों से लभ्य होता है; वरन् वह तो केवल मेरे अनुग्रह से प्राप्त है । श्री विष्णु की कृपा से ही वहाँ अवश्य वास मिलता है, कोई मनुष्य श्रीकृष्ण की कृपा के बिना वहाँ एक क्षण नहीं रह सकता है ॥ पाद्मोत्तरखण्ड में ऐसा कहा है-जिनकी श्री हरि में स्थिरा भक्ति है तथा जिन पर श्री हरि की प्रचुर कृपा है उन भाग्यवानों की मथुरा में रति होती है ॥८२-८४॥

अब मथुरा भगवान् श्रीहरि के ध्यानादिक से लभ्य है इसका

अथ मोक्षप्रदत्वम् आदिवाराहे-

या गतिर्योगयुक्तस्य ब्रह्मज्ञस्य मनीषिण: ।
सा गतिस्त्यजत: प्राणान् मथुरायां नरस्य च ॥८६॥
तीर्थे चैव गृहे वापि चत्वरे पथि चैव हि ।
यत्र तत्र मृतो देवि मुक्तिं यान्ति न चान्यथा ॥८७॥
काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासान्तु मध्ये मथुरैव धन्या ।
या जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहैर्नृणां चतुर्धा विदधाति मोक्षम् ॥८८
न योगैर्या गतिर्लभ्या मन्वन्तरशतैरपि ।
अन्यत्र हेलया सात्र लभ्यते मत्प्रसादत: ॥८९॥
न पापेभ्यो भयं यत्र न भयं यत्र वै यमात् ।
न गर्भवासभीर्यत्र तत्क्षेत्रं को न संश्रयेत् ॥९०॥

वर्णन करते हैं । पद्मपुराण के निर्वाण खण्ड में कहा है- हे ब्राह्मण शेष्ठ व्यक्तियो सुनिये ! जिस समय मनुष्य तपस्या आदि के द्वारा शुभाशय वाला एवं ध्यानधन विशिष्ट हो विशुद्ध होते हैं, उस समय वे मेरी उत्तमपुरी मथुरा का अवलोकन करते हैं, परन्तु अन्य प्रकारों से शत कल्प में भी दर्शन लाभ नहीं होता ॥८५॥

अब मोक्ष प्रदत्व के बारे में कहते हैं-आदिवाराह में कहा है-योग परायण तथा ब्रह्मज्ञ विद्वानों की जो गति होती है वह गति मथुरा में प्राण त्याग करने वाले मनुष्य की है । तीर्थ में हो, किम्वा गृह में हो अथवा चबूतरा मार्ग में जहाँ तहाँ हो मनुष्य की प्राण त्याग से मुक्ति प्राप्त होती है इसमें कोई संदेह नहीं है । यद्यपि लोक में काशी आदि सप्तपुरी मौजूद हैं तो भी उनके मध्य में मथुरा ही परम धन्म है । जो जन्म से, मौञ्जीव्रत से, मरण एवं जलन से इन चार प्रकार से मोक्ष देने वाली है ॥ तपस्या परायण मनुष्यों की अन्यत्र शत मन्वन्तर में

विना सांख्येन योगेन विना स्वात्मविचिन्तनम् ।
विना व्रत-तपो-दानैः श्रेयो वै प्राणिनामिह ॥६१॥
कल्पग्रामेण किं तस्य वाराणस्याञ्च वा शुभे ।
मथुरायान्तु यत्पुण्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥६२॥
मथुरायां समासाद्य यः कश्चिन् म्रियते भुवि ।
अपि कीटः पतङ्गो वा जायते स चतुर्भुजः ॥६३॥

गौतमीये तन्त्रे-
मथ्नाति सर्व-पापानि ददाति परमं पदम् ।
उत्तमो हि नरो यत्र तेन सा मथुरा स्मृता ॥६४॥

आदिवाराहे कृमि-कीट-पतंगाद्या मथुरायां मृता हि ये ।
कूलात् पतन्ति ये वृक्षास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥६५॥

जो गति मिलती है वह गति मेरी कृपा से यहाँ हेला मात्र से मिलती है ॥ जहाँ पापों से भय नहीं है, जहाँ यम का भी भय नहीं तथा जहाँ गर्भवास भय नहीं है उस मथुरा क्षेत्र का आश्रय कौन नहीं करता ? बिना सांख्य से, बिना योग से तथा बिना निज आत्म योग चिन्तन से एवं बिना व्रत-तप-दानों के द्वारा भी यहाँ प्राणियों का परम कल्याण होता है। हे शुभे ! वाराणसी में कल्प काल पर्यन्त वास करने से क्या है ? मथुरा में जो पुण्य लाभ है उसका फल सुनो, जो कोई भी मनुष्य मथुरा प्राप्त होकर मृत्यु लाभ करता है वह कीट-पतंग रूप में जन्म होने पर भी चतुर्भुज माना जाता है ॥८६-६३॥

गौतमीयतन्त्र में कहा है, समस्त पापों के मंथन के कारण तथा परम पद के प्रदान के कारण एवं जहाँ के मनुष्य उत्तम हैं इसलिये वह मथुरा कही जाती है ॥६४॥

आदिवाराह में कहा है कृमी, कीट, पतंगादि जो मथुरा में मरते हैं तथा जो सब वृक्ष तट से गिरते हैं वे सब परम गति को प्राप्त होते हैं ॥६५॥

वाराहे-

विंशयोजनविस्तारो मथुरायाश्च मण्डलम् ।

यत्र प्राणान् विमुञ्चन्तः सिद्धा यान्ति परां गतिम् ॥९६॥

पाद्मे पातालखण्डे-

चण्डाल-पुक्कशस्त्रीणां प्राणिहिंसारतात्मनाम् ।

मथुरा-पिण्डपातेन पुनर्जन्म न विद्यते ॥९७॥

प्रणाल्यामिष्टकचिते श्मशाने व्योम्नि मञ्चके ।

अट्टाले वा मृता देवि माथुरे मुक्तिमाप्नुयुः ॥९८॥

वामनपुराणे-

मथुरा-तीर्थमतुलं विश्रुतं लोकसत्कृतम् ।

यत्र कृष्णस्तु गोपालैः समं क्रीड़ितवान् जले ॥९९॥

तत्र गत्वा नरो ब्रह्मन् मुच्यते सर्वपातकैः ।

त्रिरात्रमुषितस्तत्र निराहारो जितेन्द्रियः ।

विहरन्तं जले कृष्णं ध्यायन् मुक्तो भवेन्नरः ॥१००॥

वराह पुराण में कहा है कि मथुरा मण्डल बीस योजन है जहाँ प्राण त्याग करने पर सिद्ध समस्त परम गति लाभ करते हैं ॥९६।

पद्मपुराण के पाताल खण्ड में भी कहा है-चाण्डाल, यवन, स्त्री, हिंसारत आत्मा वालों के मथुरा में शरीर पात करने पर पुनर्जन्म नहीं है । मोरी, टूटे मकान, श्मशान, आकाश, मंच, अट्टालिका जहाँ भी हो मनुष्य मरने पर मुक्ति प्राप्त होते हैं ॥९७-९८॥

वामन पुराण में कथन है-मथुरा तीर्थ अतुलनीय, सुकृत-जनों से युक्त करके प्रसिद्ध है । यहाँ श्रीकृष्ण ने गोपाल बालकों के साथ जल-स्थल यत्र तत्र क्रीड़ा की है । वहां मनुष्य गमन से समस्त पापों से मोचन हो जाता है । यदि मनुष्य निराहार, जितेन्द्रिय होकर वहाँ जल क्रीड़ा परायण श्रीकृष्ण का ध्यान

सौरपुराणे—

अस्तीह मथुरा नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
कृष्णपादरजोमिश्रबालुकापूत-वीथिका ॥
पवनेन नरस्तस्या मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥ १०१ ॥

मथुराखण्डे—

मथुरायां वसिष्यामि यास्यामि मथुरामहम् ।
इति यस्य भवेद्बुद्धिः सोऽपि बन्धात् विमुच्यते ॥ १०२ ॥

अथ विष्णुलोकप्रदत्वम् , ब्रह्माण्डे—

ये पश्यन्त्यच्युतं देवं माथुरे देवकीसुतम् ।
ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन ॥ १०३ ॥
यात्रां करोति कृष्णस्य श्रद्धया यः समाहितः ।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १०४ ॥

करता हुआ तीन रात निवास करता है तब वह मुक्त हो जाता है ॥९९-१००॥

सौरपुराण में कहा है-मथुरा नाम तीन लोक में विख्यात है, जहाँ के मार्ग श्रीकृष्ण पाद रजों से मिश्र बालुका से पवित्र है। उस मार्ग में मनुष्य पतन होने पर जन्म बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ १०१ ॥ मथुराखण्ड में वर्णन है कि-मैं मथुरा में जाकर निवास करूँगा, मैं मथुरा को जाऊँगा इस प्रकार जिसकी बुद्धि होती है वह बन्धन से विमुक्त हो जाता है ॥ १०२ ॥

अब विष्णुलोक प्रदान करने वाली मथुरा है इसका वर्णन-ब्रह्माण्डपुराण में कहा है—जो भी मथुरा में देवकी पुत्र अच्युत देव का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक प्राप्त होकर वहाँ से कभी नहीं गिरते हैं। जो श्रद्धायुक्त होकर मथुरा में कृष्ण की यात्रा करता है वह समस्त पाप से विनिर्म्मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥ १०३-१०४ ॥

पाद्मे पातालखण्डे-

स्त्रियो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ।।
मथुरायां मृता ये च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ।। १०५ ।।
मूका जड़ान्धवधिरास्तपो-नियमवर्जिताः ।
कालेनैव मृता ये च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ।। १०६ ।।
सर्पदंष्टाः पशुहताः पावकाम्बुविनाशिताः ।
लब्धापमृत्यवो ये च माथुरे हरिलोकगाः ।। १०७ ।।

अथ सर्वाभीष्टप्रदत्वं ब्रह्माण्डपुराणे -

सत्यं सत्यं मुनिश्रेष्ठ ब्रुवे शपथपूर्वकम् ।
सर्वाभीष्टप्रदं नान्यन् मथुरायाः समं क्वचित् ।। १०८ ।।

स्कान्दे मथुराखंडे-

क्षेत्रपालो महादेवो वर्तते यत्र सर्वदा ।
यत्र विश्रान्तितीर्थञ्च तत्र किं दुर्लभं फलम् ।। १०९ ।।

पद्मपुराण के पातालखण्ड में कहा है—स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी तथा मृग जो भी मथुरा में मृत्यु प्राप्त होते हैं वे सब विष्णुलोक को जाते हैं। मूँक, जड़, अन्ध, बधिर, तप-नियम से रहित जो भी समय पर मर कर विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं। सर्पों से दंशित, पशु से हत, अग्नि-जल से विनाश प्राप्त तथा किसी भी अपमृत्यु से विनाशित समस्त प्राणी मथुरा में हरिलोक प्राप्त करते हैं ।। १०५-१०७ ।।

अब सर्वाभीष्ट प्रदत्व का वर्णन करते हैं—ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं शपथ लेकर सत्य कहता हूँ सत्य कहता हूँ कि मथुरा के समान अन्यत्र कहीं कोई तीर्थ सर्वाभीष्टप्रद नहीं है ।। १०८ ।। स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में कहा है-जहाँ सर्वदा महादेवजी क्षेत्रपाल रूप में विराजमान हैं जहाँ विश्रान्ति-तीर्थ भी है उस मथुरा में क्या दुर्लभ फल है अर्थात् दुर्लभ फल कुछ

पाद्मे पातालखंडे--

त्रिवर्गदा कामिनां या मुमुक्षूणां च मोक्षदा ।
भक्तीच्छोर्भक्तिदा कस्तां मथुरां नाश्रयेद्बुधः ॥ ११० ॥

तत्रैव पातालखंडे पार्वतीप्रश्नः-

उक्तोऽद्भुतश्च महिमा मथुरायाः जटाधर ! ।
मुनेर्भुवो वा सरितः प्रभावः केन वा विभो ? ॥ १११ ॥
कृष्णस्य वा प्रभावोऽयं संयोगस्य प्रतापवान् ॥ ११२ ॥

श्री महादेवोत्तरम्-

न भूमिकाप्रभावश्च सरितो वा वरानने ।
ऋषीणां न प्रभावश्च प्रभावो विष्णुतारके ॥ ११३ ॥

नहीं है ॥ १०९ ॥ पद्मपुराण के पातालखण्ड में कथन है-- कामना करने वालों को त्रिवर्ग देने वाली, मुमुक्षुजनों को मोक्ष देने वाली तथा भक्ति इच्छा करने वालों को भक्ति प्रदायिनी उस मथुरा का आश्रय कौन पंडित नहीं करता है ॥ ११० ॥ पद्म-पुराण के पातालखण्ड में पार्वतीजी ने प्रश्न किया कि-हे जटा-धर ! मथुरा की अद्भुत महिमा आपने कही, इस प्रकार जो अद्‌भुत महिमा देखने में आ रही है वह क्या किसी मुनि के प्रभाव से ? अथवा पृथ्वी के प्रभाव किम्बा नदियों के प्रभाव से ? अथवा किसी देवता का प्रभाव ? किम्बा नित्य विराजित श्रीहरि का यह प्रभाव है ? ॥ १११-११२ ॥ इस प्रश्न पर श्री महादेवजी ने उत्तर दिया कि-यह पृथिवी किम्बा जल अथवा किसी ऋषि का प्रभाव नहीं है । यह प्रभाव तो विष्णु, तारक तथा चिच्छक्ति पारक से है । पारक एवं चिच्छक्ति से ही यह मथुरा गठित है । हे देवि ! सुनो, जिससे मथुरा का इस प्रकार प्रभाव है । समस्त चिच्छक्ति के कारण जो श्रीकृष्ण की महिमा प्रव-र्त्तित है उसका प्रभाव तारक एवं पारक है । तारक से मुक्ति एवं

तथा पारकचिच्छक्तेरुभे तत्पदकारके ।
तदेव शृणु भो देवि प्रभावो येन वर्तते ॥ ११४ ॥
श्रीकृष्णमहिमा सर्वोचिच्छक्तेर्यः प्रवर्तते ।
तारकं पारकं तस्य प्रभावोऽयमनाहतः ।
तारकाज्जायते मुक्तिः प्रेमभक्तिस्तु पारकात् ॥ ११५ ॥

तत्रैव श्रीभगवद्वाक्यम्-

उभौ मन्त्राबुभे नाम्नी मदीय-प्राणवल्लभे ।
नाना नामानि मन्त्राश्च तन्मध्ये सारमुच्यते ॥ ११६ ॥
अज्ञातमथवा ज्ञातं तारकं जपते यदि ।
यत्र तत्र भवेन्मृत्युः काश्यान्तु फलमादिशेत् ॥ ११७ ॥
वर्त्तते यस्य जिह्वाग्रे स पुमान् लोकपावनः ।
छिनत्ति सर्वपापानि काशीवासफलं लभेत् ॥ ११८ ॥
इति तारकमन्त्रोऽयं यस्तु कास्यां प्रवर्त्तते ।
स एव माथुरे देवि ! वर्त्ततेऽत्र वरानने ! ॥ ११९ ॥
अथ पारकमुच्येत यथामन्त्रं यथा फलम् ।
पारकं यत्र वर्त्तते ऋद्धि-सिद्धि समागमः ॥ १२० ॥

पारक से प्रेम भक्ति की उत्पत्ति होती है ॥ ११३-११५ ॥ पद्म-पुराण में भगवान का वचन भी है कि-ये दोनों मन्त्र तथा ये दोनों नाम मेरे अत्यन्त प्राणवल्लभ हैं, समस्त नाम तथा समस्त मन्त्रों से यह परम सार हैं। अज्ञात रूप से हो अथवा ज्ञात रूप से हो यदि किसी को तारक की उत्पत्ति हो जाती है तब जहाँ तहाँ मृत्यु होने पर उस व्यक्ति की फल-प्राप्ति काशी अधिकार करके है। जिसकी जिह्वा पर तारक नाम विराजमान है वह पुरुष लोक-पावन माना जाता है। यह तारक मन्त्र भी समस्त पापों का छेदन कर काशीवास फल को प्राप्त कराता हैं इससे इसको तारक मंत्र कहा जाता है जो कि काशी में प्रवर्त्तित रहता है। वह तारक मथुरा में भी प्राप्त है ॥ ११६-११९ ॥

पूज्यो भवति त्रैलोक्ये शतायुर्जायते पुमान् ।
अष्टसिद्धिसमायुक्तो वर्त्तते यत्र पारकम् ॥ १२१ ॥
पारकं यस्य जिह्वाग्रे तस्य सन्तोषवर्त्तिता ।
परिपूर्णो भवेत् कामः सत्यसङ्कल्पता तथा ॥ १२२ ॥
द्विविधा प्रेमभक्तिस्तु श्रुता दृष्टा तथा फलम् ।
अखंडपरमानन्दस्तद्‌गतो ज्ञेयलक्षणः ॥ १२३ ॥
अश्रुपातः क्वचिन्नृत्यं क्वचित् प्रेमातिविह्वलः ।
क्वचित्तस्य महामूर्च्छा सद्‌गुणो गीयते क्वचित् ॥ १२४

अथ प्रपञ्चातीतत्वं आदिवाराहे---

अन्यैव काचित् सा सृष्टिर्विधातुर्व्यतिरेकिणी ।
न यत् क्षेत्रगुणान् वक्तुमीश्वरोऽपीश्वरो यतः ॥ १२५ ॥

अब पारक की महिमा यह है कि जैसा मन्त्र तैसा फल है। जहाँ पारक मौजूद है वहाँ ऋद्धि-सिद्धियाँ आ जाती हैं। मनुष्य तीन लोक में पूज्य एवं शतायु होकर जन्म लेता है। जहाँ पारक है वहाँ अष्ट सिद्धि उपस्थित रहती है। जिसके जिह्वा पर पारक है उसमें सन्तोषादि गुण आ जाते हैं। उसकी कामना परिपूर्ण होती है तथा सत्य संकल्प गुण भी आ जाता है। दो प्रकार की प्रेम भक्ति है जिनके फल भी दो प्रकार के सुनने में देखने में आता है। पारक प्राप्त व्यक्ति का अखंड परमानन्द रूप रहना यह चिह्न (लक्षण) है। वहाँ तो अश्रुपात, कहीं नृत्य, कहीं प्रेमातिविह्वलता, कहीं महामूर्च्छादिक क्रिया सब होती है वह निरन्तर मेरी गुणावली का गान करता है ॥ १२०-१२४ ॥ अब मथुरा प्रपञ्चातीत है इस इस विषय में कहते हैं-आदिवाराह में कहा है-मथुरा की वह सृष्टि अन्य प्रकार की है जो कि विधाता की सृष्टि से बाहर। जिस मथुरा

स्कान्दे मथुराखंडे–

तन्मण्डलं माथुरं हि विष्णुचक्रोपरि स्थितम् ।
पद्माकारं सदा तत्र वर्त्तते शाश्वतं नृप ! ।। १२६ ।।

पाद्मे पातालखण्डे–

ऋषिर्माथुरनामात्र तपः कुर्वति शाश्वते ।
ततोऽस्य माथुरं नामाभवदाढ्यं श्रिया युतम् ।। १२७ ।।

तत्रैव निर्वाणखण्डे–

नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा ।
यमुनागोपकन्याश्च तथा गोपालबालकान् ।। १२८ ।।
अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः पुरीं मदीयां परमां सनातनीम् ।
सुरेन्द्र-नागेन्द्र-मुनीन्द्रसंस्तुतां मनोरमां तां मथुरां परां गतिम् ।।१२९

अथ देवत्रयरूपत्वं, पाद्मे पातालखण्डे–

मकारे च उकारे च अकारे चान्तसंस्थिते ।
माथुरः शब्दनिष्पन्न ॐकारस्य ततः समः ।। १३० ।।

क्षेत्र के गुणों को बोलने के लिए ईश्वर भी असमर्थ हैं ।। १२५ ।। स्कन्द पुराण के पातालखण्ड में कहा है–वह मथुरा मंडल विष्णु-चक्र के ऊपर स्थित है । हे नृप ! विष्णु-चक्र के ऊपर निरन्तर पद्माकार रूप में वह विराजमान है ।। १२६ ।। पातालखंड में भी कहा है-इस नित्य स्थान में माथुर नामक ऋषि तपस्या कर रहे हैं इसलिए इसका मथुरा नाम पड़ा है जो श्री आदि लक्षणों से युक्त हैं । वहाँ निर्व्बाणखंड में कहा है–मेरी मथुरा को नित्यरूप जानना, इस प्रकार वृन्दावन, यमुना, गोपकन्या, गोपबालकों को नित्य ही मानना, अहो दुराशयी मनुष्यगण परमा, सनातनी, सुरेन्द्र-नागेन्द्र-मुनीन्द्रों से संस्तुत, मनोहरा, परमगतिरूपा मेरी पुरी को नहीं जानते ।। १२७-१२९ ।।

महारुद्रो मकारः स्यादुकारो ब्रह्मसंज्ञकः ।
अकारे विष्णुरूपः स्यात् त्रिशब्दं माथुरं भवेत् ॥ १३१ ॥
तदा वरः श्रेष्ठ उक्तः सत्य एवाभवत्ततः ।
सा त्रिदेवमयी मूर्त्तिर्माथुरी तिष्ठते सदा ॥ १३२ ॥

अथ श्रीकृष्णभक्तिप्रदत्वम् पाद्मे पातालखंडे-

अन्येषु पुण्यतीर्थेषु मुक्तिरेव महाफलम् ।
मुक्तैः प्रार्थ्या हरेर्भक्तिर्मथुरायान्तु लभ्यते ॥ १३३ ॥
त्रिरात्रमपि ये तत्र वसन्ति मनुजा मुने ! ।
हरिर्दद्यात् सुखं तेभ्यो मुक्तानामपि दुर्ल्लभम् ॥ १३४ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे-

त्रैलोक्यवर्त्तितीर्थानां सेवनाद्दुर्ल्लभा हि या ।
परानन्दमयी सिद्धिर्मथुरास्पर्शमात्रतः ।।१३५ ॥

अब मथुरा देवत्रय रूप है उसे कहते हैं-पद्मपुराण के पातालखंड में कहा है मथुरा उस शब्द में मकार, उकार, अकार मौजूद हैं उससे मथुरा शब्द निष्पन्न हुआ है जो कि ओंकार शब्द के सम प्राप्त है। मकार में महारुद्र, उकार में ब्रह्मसंज्ञा, अकार में विष्णुस्वरूप मौजूद है। अतएव त्रिशब्द युक्त माथुर शब्द है। उससे मथुरा अत्यन्त श्रेष्ठ कहा गया है तथा उसकी सत्यता भी सिद्ध हो रही है। वह देवत्रय रूपिणी मथुरा निरन्तर विराजमान है ॥ १३०-१३२ ॥

अब मथुरा श्रीकृष्ण भक्ति को देने वाली है उसे कहते हैं-पद्मपुराण के पातालखंड में कहा-अन्यान्य पुण्य-तीर्थों में मुक्ति के द्वारा प्रार्थनीया श्रीहरि की भक्ति मथुरा में मिलती है। हे मुनिराज ! उस मथुरा में जो तीन रात्रि निवास करते हैं उनको श्रीहरि मुक्तों के दुर्ल्लभ परमसुख प्रदान करते हैं ॥ १३३-१३४ ॥

स्कान्दे मथुराखण्डे-

स्मरन्ति मथुरां ये च मथुरेशं विशाम्पते ।
सर्वतीर्थफलं तेषां स्याच्च भक्तिर्हरौ परा ॥१३६॥

अथ स्वतः परमफलत्वम्, पाद्मे पातालखण्डे

अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी ।
दिनमेकं निवासेन हरौ भक्तिः प्रजायते ॥१३७॥
एवं सप्तपुरीणान्तु सर्वोत्कृष्टं हि माथुरम् ।
श्रुयतां महिमा देवि ! वैकुण्ठभुवनोत्तमः ॥१३८॥

आदिवाराहे-

भूर्भुवः स्वस्तले वापि न पातालतलेऽमलम् ।
नोर्ध्वलोके मया दृष्टं तादृक् क्षेत्रं वसुन्धरे ॥१३९॥

ब्रह्मांडपुराण में कहा है-त्रैलोक्यवर्त्ति तीर्थों के सेवन से भी जो दुर्ल्लभ वस्तु है वह परमानन्दमयी सिद्धि मथुरा के स्पर्श मात्र से प्राप्त होती है ॥ १३५ ॥

स्कन्द-पुराण के मथुराखण्ड में कहा है-हे राजन्! जो मथुरा तथा मथुरेश का स्मरण करते हैं, उनको समस्त तीर्थ-फल प्राप्त है एवं उनकी हरि में परमा भक्ति होती है ॥१३६॥

अनन्तर इससे मथुरा स्वयं परम फलरूपा है, इसका वर्णन-पद्मपुराण के पातालखण्ड में कहा है, अहो, मथुरा नगरी धन्य है जो वैकुण्ठ से भी गरीयसी है। यहाँ दिवस मात्र निवास करने पर श्रीहरि में भक्ति उत्पन्न होती है। हे देवि ! इस प्रकार समस्त पुरियों से मथुरा-मण्डल सर्वोत्कृष्ट है, उसकी महिमा सुनो, जो वैकुण्ठ भुवन से भी उत्तम है ॥१३७-१३८॥

आदिवाराह में कहा है-हे वसुन्धरे! भू, भुव, आकाश, पाताल, ऊर्ध्वलोक में मैंने इस प्रकार विशुद्ध क्षेत्र नहीं देखा है ॥१३९॥

वाराहे—

लाभानां मथुरालाभो ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
प्रीतीनां परमाप्रीतिर्गतीनां गतिरुत्तमा ॥१४०॥
रहस्यानां रहस्यञ्च क्रियाणाञ्च महाक्रिया ।
एतन्मरणकालेऽपि स्मर्त्तव्यं मनसापि च ।
यदीच्छेत् परमां सिद्धिं संसारस्य च मोक्षणम् ॥१४१॥

अथ श्री मथुरामण्डलसीमाज्ञानम्, आदिवाराहे—

विंशतिर्यो जनानान्तु माथुरं मम मण्डलम् ॥१४२॥

तथा च पाद्मे यमुनामाहात्म्ये—

रम्यमप्सरसां स्थानं यस्मिश्चञ्चलतां गतः ।
यायावरः पुरा विप्रस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥१४३॥
चिरकालं प्रतप्तं तमिन्द्रशापाग्निनार्दितम् ।
स्पृष्ट्वा वारिकणेनेमं मोचयित्वाथ पातकात् ।
विमानेनार्कवर्णेन प्रापयन्तं सुरालयम् ॥१४४॥

वाराहपुराण में उल्लेख है-प्राप्त वस्तुओं के परमप्राप्त, ज्ञानों में उत्तम ज्ञान, प्रीतियों का परम प्रीतिरूप, गतियों की परम गति, रहस्यों के परम रहस्य, क्रियाओं की महान् क्रिया मथुरा पुरी है। यदि परम सिद्धि एवं घोर संसार से मोक्ष की इच्छा करतेहो तो इस परम पवित्र मथुरा पुरी को मरण समय में भी मन के द्वारा स्मरण करना चाहिये ॥१४०-१४१॥

अब मथुरा-मण्डल की सीमा का निर्णय बतलाते हैं। आदि-वाराह में कहा है-मथुरा-मण्डल बीस योजन का है ॥१४२॥

और भी पद्मपुराण के यमुना माहात्म्य में कथन है कि मनोहर अप्सरा-लोक से चलायमान होकर पहिले यायावर नामक विजितेन्द्रिय तपस्वी विप्र ने इन्द्र-शाप से पीड़ित हो

पूज्यमानादरेणार्घ्यैर्वानप्रस्थैर्यथा विधि ।
मथुरामण्डलं प्राप्ता तस्माद्देवर्षसेविता ॥१४५॥
पावयित्वा कुरून् देशान् शूरसेनान् समाविशत् ।
वनानि द्वादश स्फीतास्फीतानि गुणसम्पदा ॥१४६॥
क्रमाद्विश्रान्तिमासाद्य विश्रान्ता केशवालये ।
सुदर्शनोपरि गता गतश्रमसमीपगा ॥१४७॥

इत्युपक्रम्य—

आश्लिष्टा वासुदेवेन सत्कृत्याभ्यर्च्चिता सती ।
अनुज्ञाता गता पुण्या सुपुण्यं ध्रौव्यमाश्रमम् ॥१४८॥
सम्प्राप्ता पुण्यसलिला सुपुण्यं रेणुकाश्रम् ।
दीक्षितो यत्र रामोऽभूत् सर्वक्षत्रक्षयाध्वरे ॥१४९॥

चिरकाल पर्य्यन्त तपस्या की। यमुना अपने जलकण के स्पर्श के द्वारा उसे उस पातक से मुक्त कराकर सूर्य्य सदृश वर्ण वाला विमान में बिठाकर देवालय में पहुँचाने लगी। वहाँ यमुना वानप्रस्थ वालों से आदरतापूर्वक यथा विधि अर्घ्यादि से पूजाती हुई, अनन्तर मथुरा मण्डल प्राप्त होकर वहां देवर्षिगण से परिसेविता होनेलगी तदनन्तर वह यमुना, कुरुदेश, शूरसेन देशों को पवित्र करती हुई एवं नाना गुणों से विस्तारित बारह-वनों की शोभा को बढ़ाती हुई क्रम प्राप्त विश्रान्ति तीर्थ में पहुँच कर केशव भवन में विश्राम करने लगी। तदनन्तर सुदर्शन के ऊपर होकर गतश्रम नारायण के समीप बहने लगी। इस प्रकार उपक्रम करके आगे वासुदेव से आलिङ्गिता होकर सत्कार तथा पूजा प्राप्त होने लगी। अनन्तर परम पुण्या वह यमुना ध्रुव जी के आश्रम के पास बहने लगी पुनः पुण्य-सलिला वह यमुना परम पवित्र रेणुकाश्रम प्राप्त हुई। जहाँ परशुराम ने समस्त क्षत्रिय नाश रूप यज्ञ में दीक्षा प्राप्त किया था।

ततः प्रयाता यमुना भवतस्याश्वमेधिकम् ।
इष्टं शाकुन्तलेयेन सारङ्गैर्यत्र सप्तभिः ॥१५०।
अथ सप्ततिभिर्मेध्यैः सोमेनेन्द्रोऽप्ययमाद्यत
ततः प्रत्यङ्मुखी भूत्वा श्रद्धया मथुरां पुरीम् ।
मोचयन्तीमसुभृतः कर्मबन्धादपश्यत ॥१५१॥
पुनः सा प्राङ्मुखी भूत्वा सम्प्राप्ता शौकरीं पुरीम् ।
यस्यां धरां समुद्धर्त्तुमुत्पन्नश्चादिशूकरः ॥१५२॥
ततस्तां नगरीं शौरी भूत्वा प्रत्यङ्मुखी पुनः ।
परिक्रम्य विनिष्क्रान्ता जिह्मगत्येव पन्नगी ॥१५३॥
ततः सा शूरसेनेभ्यः पाञ्चालानां विमुक्तिदा ।
इष्टकाश्रममापेदे वरेष्टायतनं महत् ॥१५४॥

एतेन यायावरमवधिकृत्य शौकरीवटेश्वरपर्यन्तं मथुरामण्डलं ज्ञेयम् एवमेव सर्वासु दिक्ष्वपि तथाज्ञेयम् विंशतियोजनात्मके बहु तीर्थवत्तया विशेषः ॥१५५॥

अनन्तर भरताश्रम में जहां कि शकुन्तला के अपत्यों ने सात अश्वमेध यज्ञ किये हैं उपस्थित हुई । अनन्तर वह पश्चिम मुखी होकर प्राणधारियों को कर्म्म बन्धन से मोचन करने वाली मथुरा पुरी को देखने लगी, फिर पूर्वमुखी होकर शौकरीपुरी प्राप्त हुई । जहाँ पृथिवी का उद्धार करने के लिये आदिशूकर भगवान् प्रकट हुए थे । तदनन्तर फिर वह सूर्यपुत्री यमुना पश्चिम मुखी होकर उस नगरी की परिक्रमा कर कुटिल गति से बहने लगी । तदनन्तर वह शूरसेन पांचाल देशों को मुक्त करती हुई अति विस्तार महान् इष्टकाश्रम (इटावा) प्राप्त हुई ॥ इससे यायावर को अवधि करके शौकरी क्षेत्र-वटेश्वर पर्यन्त मथुरा मण्डल की स्थिति जानना । इस प्रकार से समस्त दिशाओं को मानना, बीस योजन विस्तृत मथुरा मण्डल में

मथुराखण्डे—

मथुरामण्डलं तद्धि योजनानांतु द्वादश ।
यत्र तीर्थ सहस्राणि रामकृष्णकृतानि च ॥१५६॥

तत्रापि वैशिष्टयम्—

गव्युति द्वादशमयी द्वादशारण्य संयुता ।
तत्रापि मथुरा देवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥

अत्रापि-पद्माकृतेर्वैशिष्ट्यम् आदिवाराहे-

इदं पद्मं महाभागे ! सर्वेषां मुक्तिदायकम् ।
कर्णिकायां स्थितो देवि केशवः क्लेशनाशनः ।
कर्णिकायां मृता ये च तेषां मुक्तिर्वसुन्धरे ॥१५७॥
पश्चिमेन हरिं देवं गोवर्धननिवासिनम् ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं किं मनः परितप्यसे ॥१५८॥
उत्तरेण तु गोविन्दं दृष्ट्वा देवं परात् परम् ।
नासौ पतति संसारे यावदाहूतसंप्लवम् ॥१५९॥

बहुतीर्थों के कारण यह विशेषता है ॥१४३-१५५॥

मथुराखण्ड में कहा गया है-मथुरा-मण्डल के परिमाण बारह योजन हैं। वहाँ हजारों तीर्थ मौजूद हैं जिनकी मनोहर रचना श्रीराम कृष्ण दोनों ने की है। तो भी वहाँ विशेषता यह है कि बारह गव्युति (क्रोश युग्म) मयी बारह वन से संयुक्त मथुरा देवी सर्वसिद्धि प्रदायिनी है। इससे फिर पद्माकर मथुरा मण्डल की विशेषता है। आदिवाराह में कहा है-हे महाभागे ! यह पद्माकार स्थान सबके मुक्ति देनेवाला है। हे देवि ! इस पद्माकार की कर्णिका में क्लेशनाशन केशव विराजमान हैं। हे पृथीवि ! जो कर्णिका स्थल में मृत्यु प्राप्त होते हैं उनकी मुक्ति हो जाती है। पश्चिमभाग में गोवर्द्धननिवासी देवदेव हरिदेव नारायण का दर्शन कर मन क्यों परितप्त हो रहे हो ? उत्तर में

विश्रान्तिसंज्ञकं देवं पूर्वपत्रे व्यवस्थितम् ।
यं दृष्ट्वा तु नरो याति मुक्तिं नास्त्यत्र संशयः ॥१६०॥
दक्षिणेनोत्तमां विद्धि प्रतिमां दिव्यरूपिणीम् ।
महाकायां स्वरूपाञ्च केशवाकारसन्निभाम् ॥
यां दृष्ट्वा मनुजो देवि ब्रह्मणा सह मोदते ॥१६१॥

अथात्र कालविशेषे निवासादिफलम् तत्र ज्यैष्ठे आदिवाराहे-
ज्यैष्ठस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा तु यमुनाजले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१६२॥

चातुर्मास्ये, आदिवाराहे—
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रं सरांसि च ।
मथुरायां गमिष्यन्ति मयि सुप्ते वसुन्धरे ! ॥१६३॥

परात्पर गोविन्द देव का दर्शन कर मनुष्य महाप्रलय पर्यन्त भी संसार में नहीं गिरता है । हे देवि ! पूर्वदल में विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ है । जिसको देखकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त होता है इसमें कोई संदेह नहीं है । दक्षिणभाग में दिव्यस्वरूपिणी, महाकाया स्वरूप, केशव की भाँति वर्णवाली, मेरी उत्तम प्रतिमा है । जिसका दर्शन कर मनुष्य ब्रह्मा के साथ स्थित हो प्रसन्नता लाभ करता है ॥१५६-१६१॥

अब समय विशेष में निवासादि करने का फल कहते हैं-पहिले ज्येष्ठ मास का फल सुनो, आदिवाराह में कहा है-ज्येष्ठ द्वादशी में यमुना जल में स्नान कर मथुरा में श्रीहरि का दर्शन करने पर परमगति को प्राप्त होते हैं ॥१६२॥

चातुर्मास्य में यथा आदिवाराह में-हे वसुन्धरे ! मेरे शयन हो जाने पर उस चातुर्मास्य में पृथिवी में जितने समुद्र-सरोवर लेकर तीर्थ हैं वे सब मथुरा में आजाते हैं। जनार्दन के सो

सप्त द्वीपेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
मथुरायां गमिष्यन्ति सुप्ते चैव जनार्दने ॥१६४॥
चतुरो वार्षिकान् मासान् मथुरायां वसेमहि ।
सर्वाणि तत्र तीर्थानि वसन्ति विविधानि च ॥१६५॥

अथ भाद्र जन्माष्टम्यां, आदिवाराहे—

जन्माष्टमी दिने प्राप्ते तत्र यो मां प्रपश्यति ।
जन्म कोटि कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१६६॥
भाद्रे मासि ममाष्टम्यां यः करोति ममार्च्चनम् ।
सर्वं पापं परित्यज्य मम स्थानं स गच्छति ॥१६७॥
सर्वंतप्तं तपस्तेन सर्वं दानञ्च तैः कृतम् ।
यैः कृतं मथुरां गत्वा भाद्रेऽष्टम्यां वसुन्धरे !
स्नात्वा विश्रान्तितीर्थे तु पूजनं मेऽवलोकनम् ॥१६८॥

विशेषतः कार्तिके, पाद्मे कार्तिकमाहात्मे-नारदवाक्यम्—

जाने पर सप्तद्वीपों में जितने तीर्थ तथा पुण्यालय हैं वे मथुरा में चले जाते हैं। चारिमास पर्यन्त मथुरा में हम सब निवास करते हैं तथा उस समय विविध विविध समस्त तीर्थ आकर वहाँ मौजूद रहते हैं ॥१६३-१६५॥

अब भाद्रमास जन्माष्टमी के दिवस--

आदिवाराह में कहा है-जन्माष्टमी के आजाने पर मथुरा में जो हमारे दर्शन करता है उसके उसी क्षण जन्म कोटि के किये हुए पाप नाश होजाते हैं। और भी कहा है-भाद्रमास मेरी अष्टमी तिथि में जो मेरी अर्च्चना करता है वह समस्त पाप छोड़ कर मेरे धाम को जाता है। हे वसुन्धरे ! भाद्रअष्टमी में मथुरा में जाकर जिन्होंने विश्रान्ति तीर्थ में स्नान कर मेरे पूजन दर्शन किये हैं उन्होंने मानो समस्त तपस्या की है, समस्त दान दिया है ॥१६६-१६८॥

यत्र कुत्रापि देशे तु कार्तिके स्नान-दानतः।
अग्निहोत्रसमं फलं पूजायान्तु विशेषतः ॥१६६॥
कुरुक्षेत्रे कोटिगुणं गङ्गायामपि तत्समम्।
ततोऽधिकं पुष्करे स्याद्द्वारकायान्तु भार्गव! ॥१७०॥
कृष्णसालोक्यदो मासः पूजास्नानैश्च कार्त्तिकः।
अन्याः पुर्य्यस्तत्-समाना मुनयो मथुरां विना ॥१७१॥
दामोदरत्वं हि हरेस्तत्रैवासीद्यतः किल।
मथुरायां ततस्तूर्ज्जो वैकुण्ठप्रीतिवर्द्धनः ॥१७२॥
कार्तिके मथुरायां वै परमावधि रिष्यते।
यथा माघे प्रयागः स्याद्वैशाखे जान्हवी यथा।
कार्तिके मथुरा सेव्या तत्रोत्कर्षः परो नहि ॥१७३॥

कार्तिक मास में जो विशेष फल है उसे कहते हैं-पद्मपुराण के कार्तिक माहात्म्य में श्रीनारद जी का वचन है-कार्तिक में जिस किसी देश में स्नान दान से विशेष पूजा करने से अग्निहोत्र के समान फल मिलता है। कुरुक्षेत्र में उन सब कार्यों के करने पर कोटि गुण तथा गङ्गा में उसके समान फल मिलता है। उससे अधिक फल पुष्कर तथा द्वारका में है। हे भार्गव! यह कार्तिक मास पूजा-स्नानादि से कृष्ण सालोक्य प्राप्त कराता है। अन्यान्य पुरी तथा मुनिगण केवल मथुरा छोड़ कर समान फल देते हैं। मथुरा में जो फल प्राप्त है वह सर्वाधिक है। हे दामोदर हरे! आप वहाँ ही उस समय निवास करते हैं। अतः मथुरा वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ एवं प्रीतिवर्द्धक है। कार्तिक में मथुरा पर जो कुछ होता है वह परमावधि रूप माना जाता है। जिस प्रकार माघ में प्रयागराज, वैशाख में जान्हवी जी परमावधि माने जाते हैं उसी प्रकार कार्तिक में मथुरा पुरी की सर्व्व अवधि मानी जाती है। कार्तिक में मथुरा सेवा करने की महान्

मथुरायां नरैरूर्ज्जे स्नात्वा दामोदरोऽर्च्चितः ।
कृष्णरूपा हि ते ज्ञेया नात्र कार्य्या विचारणा ॥१७४॥
दुर्लभः कात्तिको विप्रा मथुरायां नृणामिह ।
यत्रार्च्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः संप्रयच्छति ॥१७५॥
भुक्तिं मुक्तिं हरिर्दद्यादर्च्यितोऽन्यत्र सेविनाम् ।
भक्तिं न च ददात्येव यतो वश्यकरी हरेः ॥१७६॥
सा त्वञ्जसा हरे भक्तिर्लभ्यते कार्त्तिके नरैः ।
मथुरायां सकृदपि श्रीदामोदरपूजनात् ॥१७७॥
मन्त्रद्रव्यविहीनञ्च विधिहीनञ्च पूजनम् ।
मन्यते कार्तिके देवि ! मथुरायां सदर्च्चनम् ॥१७८॥
यस्य पापस्य युज्येत मरणान्ता हि निष्कृतिः ।
तच्छुद्ध्यर्थमिदं प्रोक्तं प्रायश्चित्तं सुनिश्चितम् ।
कार्त्तिके मथुरायां वै श्रीदामोदरपूजनम् ॥१७९॥

विधि है। उससे बढ़ कर काई उत्कर्ष नहीं है। कातिक में मथुरा में मनुष्यों द्वारा स्नान कर यदि दामोदर जी का अर्च्चन किया जाता है तो वे मनुष्य कृष्ण रूप जानना, इसमें कोई संशय नहीं है। हे विप्रगण ! मथुरा में कार्तिक मास मनुष्यों को अति दुर्लभ है। जिसमें श्रीहरि अर्च्चित होकर भक्तों को अपने रूप प्रदान करते हैं। अन्यत्र श्रीहरि पूजित होकर सेवा करने वालों को भुक्ति-मुक्ति प्रदान करते हैं परन्तु भक्ति का दान नहीं करते हैं। क्योंकि उससे श्रीहरि वशीभूत हो जाते हैं। मथुरा में कार्तिक महीना में एक बार मात्र दामोदर के पूजन से मनुष्यों के द्वारा वह भक्ति शीघ्र प्राप्त होती है। मथुरा में यदि कार्तिक में मन्त्र-द्रव्य से रहित विधिहीन पूजन भी होता है तो भी देव देव श्रीहरि उस पूजा को उत्तम मान लेते हैं। जिस पाप की मरण पर्य्यन्त निष्कृति होती रहती है उस पाप

सुलभा मथुरा लोके प्रत्यब्दं कार्त्तिकस्तथा ।
तथापि संसरन्तीह नरा मूढ़ा भवाम्बुधौ ॥ १८० ॥
किं यज्ञैः किं तपोभिर्वा तीर्थैरन्यैश्चसेवितैः ।
कार्त्तिके मथुरायाञ्चेदच्चर्यते राधिकाप्रियः ॥ १८१ ॥
यानि सर्वाणि तीर्थानि नद्या नद्यः सरांसि च ।
कार्त्तिके निवसन्त्येत्र माथुरे मम मण्डले ॥ १८२ ॥
परोपहासमुद्दिश्य कार्त्तिके हरिपूजया ।
मथुरायां लभेद् भक्तिं किं पुनः श्रद्धया नरः ॥ १८३ ॥

तत्रैव धूम्रकेशं प्रति यमवाक्यम्—

तस्मान्नृपात्मज ! श्रेयः परं किञ्चिन्न विद्यते ।
कार्त्तिके मथुरायाञ्च श्रीदामोदरपूजनात् ॥ १८४ ॥
न चात्र संशयः कार्य्यं ईशितृत्वमिदं हरेः ।
राजा हि कस्यचिद् धृत्वा सर्वस्वं चेत् प्रयच्छति ॥ १८५

की शुद्धि के लिए यह निश्चय रूप से प्रायश्चित बतलाया जाता है कि कार्तिक में मथुरा पर श्रीदामोदर की पूजा की जावे। लोक में मथुरा सुलभ है, प्रति वर्ष कार्त्तिक भी आता रहता है। तो भी मूढ़ नर संसार सागर में डूबते रहते हैं। यदि कार्त्तिक में मथुरा में राधिकाप्रिय अर्च्चित होते हैं तो यज्ञों से क्या है, तपस्या तथा सेवित अन्य तीर्थों से क्या है। जितने सब तीर्थ हैं तथा जितने नद-नदी-सरोवर हैं वे सब कार्तिक में मेरे मथुरा-मण्डल में निवास करते हैं। दूसरे को उपहास करते हुए भी यदि मथुरा में कार्तिक मास में हरि पूजा की जाती है तो भी मनुष्यों के लिए भक्ति मिल जाती है, श्रद्धा से यदि मनुष्य पूजा करता तो उसके लिए क्या कहना है ॥ १६६-१८३ ॥

पद्मपुराण के कार्तिक माहात्म्य में और भी कहा गया है—वहाँ धूम्रकेश के प्रति यम का वचन यथा—हे नृपकुमार ! कार्तिक

परस्मै कस्य कस्तत्र नियन्ता स्यात् प्रभोर्यथा ।
अयं सर्वेश्वरः श्रीमानन्यथा कर्त्तु मीश्वरः ।
अत्यल्पं भूरि कुरुते बहु तुच्छञ्च मन्यते ॥ १८६ ॥

प्रबोधन्यामतिविशेषः पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये-

तावद् गर्ज्जन्ति तीर्थानि वाजिमेधादयो मखाः ।
मथुरायां प्रिया विष्णोर्यावन्नायाति बोधनी ॥ १८७ ॥
संसारदावतप्तानां कामसौख्यपिपासिनाम् ।
श्रीकृष्णपादपद्मस्य सान्निध्यं शीतलं गृहम् ॥ १८८ ॥
भवपान्थजनानां वै प्रापिकेयं प्रबोधनी ।
कथं न सेव्यते मूढ़ैर्मथुरायां किमन्यतः ॥ १८९ ॥

तथा च-

मथुरायान्तु किं वाच्यं जागरे हरिसन्निधौ ।
कार्त्तिके बोधनीं प्राप्य ततः श्रेयः परं नहि ॥ १९० ॥

मास में मथुरा में श्रीदामोदर पूजन से बढ़कर अन्य कुछ उत्तम श्रेय नहीं है। इस विषय में संशय नहीं करना चाहिए। यह फल श्रीहरि के महान वैभव रूप है। यदि कोई राजा किसी का धन हरण करके अपना सर्वस्व दान करता है तो वह सबसे अधिक महान् ऐश्वर्यवान् होता है। प्रभु की भाँति वह सबका नियन्ता बन जाता है, श्रीमान् सर्वेश्वर हरि अकार्य्य को अन्यथा कार्य्य रूप करने में समर्थ होते हैं। वे अति अल्प कार्य्य को वृहदाकार करते हैं तथा वृहत्आकार को तुच्छ समझते हैं ॥ १८४-१८६ ॥

प्रबोधनी तिथि में अत्यन्त विशेष फल है, पद्मपुराण के कार्तिक माहात्म्य में--तब तक तीर्थ सकल गर्ज्जन करते हैं एवं अश्वमेधादिक यज्ञ तभी तक गर्व रखते हैं कि जब तक मथुरा में विष्णु की परमप्रिया प्रबोधनी तिथि नहीं आती है। अहो !

राज्यमन्यत्र सन्त्यज्य स्फीतं निहतकण्टकम् ।
कार्त्तिके मथुरायां वै कौमुद्यां जागरञ्चरेत् ॥ १६१ ॥

अथ द्वादश्यां, विष्णुपुराणे-

ऊर्ज्जस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १६२ ॥

अथ भीष्मपञ्चके पाद्मे भीष्मं प्रति श्रीकृष्णवाक्यम्-

त्वया कृते व्रते पश्चात् ख्यास्यते भीष्मपञ्चकम् ।
ये त्वत्र कर्म्मभूमौ मे करिष्यन्ति महाव्रतम् ।
मथुरायान्तु गांगेय ! तेषां भक्तिः करे स्थिता ॥ १६३ ॥
सार्वभौममिन्द्रपदं ब्रह्मलोकं तथाऽक्षयम् ।
योगसिद्धिञ्च मुक्तिञ्च प्रीतो यच्छामि सर्व्वशः ॥ १६४ ॥

संसार पथिक जनों के संसार - अग्नि से तप्त तथा काम सुख के पिपासु लोगों के लिए श्रीकृष्ण-पाद-पद्म में सान्निध्यस्वरूप शीतल गृप रूप यह प्रबोधिनी तिथि है । मूढ़जन मथुरा में रहकर उसकी सेवा क्यों नहीं करते ? और भी कहा है—मथुरा में श्रीहरि के निकट जागरण का फल का क्या कहना है । कार्तिक में प्रबोधनी से अन्य कोई श्रेय नहीं है । निष्कण्टक राज्य का त्याग कर कार्तिक में मथुरा में प्रबोधिनी-जागरण करें ॥ १८७-१६१ ॥

अब द्वादशी में फल विष्णुपुराण का वचन—कार्तिक शुक्ला द्वादशी में जमुना जल में स्नान कर मथुरा में श्रीहरि का दर्शन करने पर परमगति को प्राप्त करते हैं । ॥ १६२ ॥

अब भीष्म पञ्चक के फल कहते हैं—पद्मपुराण में भीष्म के प्रति श्रीकृष्ण वाक यथा-हे भीष्म ! तुमसे किया हुआ यह व्रत पीछे भीष्म पञ्चक करके प्रसिद्ध होगा । जो इस कर्म - भूमि में रह कर मथुरा में जाकर इस महाव्रत को करेंगे उनको भक्ति कर स्थिता होगी । मैं प्रसन्न होकर उन्हें सार्वभौम पद, इन्द्रपद,

दुर्लभो भक्तियोगो मे मम वश्यविधायकः ।
कार्त्तिके मथुरायान्तु व्रतेनानेन लभ्यते ॥ १६५ ॥

पुराणान्तरे च-

सर्वाभीष्टप्रदं प्रोक्तं माथुरे भीष्मपञ्चकम् ॥ १६६ ॥

तथा भविष्ये-

भीष्म-पञ्च-दिने प्राप्ते माथुरे मण्डले हरेः ।
निद्राच्छेदकरे पुण्ये पादुके चावलोकयेत् ॥ १६७ ॥

अथ मधुवनान्तर्गत-मधुपुरीमाहात्म्यम्, स्कान्दे मथुराखण्डे-

मधोर्वनं प्रथमतो यत्र वै मथुरापुरी ।
मधुदैत्यो हतो यत्र हरिणा विश्वमूर्त्तिना ॥ १६८ ॥
तत्रैव भगवद्वास आविर्भावो हरेर्नृप !
विश्रामश्च हरेस्तत्र देवानाञ्च नृपोत्तम ! ॥ १६९ ॥
यो वै मधुवने स्नाति यमुनाजलमाश्रितः ।
सर्वतीर्थेषु स स्नातस्तत्फलं लभते ध्रुवम् ॥ २०० ॥

अक्षय ब्रह्मपद, योगसिद्धि तथा मुक्ति का प्रदान करूँगा। मेरे वश्यकरी भक्तियोग दुर्ल्लभ है, वह कार्तिक में मथुरा पर इस व्रत करने वालों को प्राप्त होता है। पुराणान्तर में कहा है—मथुरा में भीष्मपञ्चक व्रत सर्वाभीष्टप्रद कहा गया है। भविष्य-पुराण में भी कहा है-भीष्मपञ्चक दिवस के प्राप्त होने पर मथुरा में श्रीहरि के निद्राच्छेदकारी पवित्र पादुका युगल का अवलोकन करें ॥ १६३-१६७ ॥

अब मधुवन के मध्य बिराजमान मधुपुरी का माहात्म्य—स्कन्दपुराण के मथुरा खण्ड में कहा है-पहिले मधुवन आता है जिसमें मथुरापुरी है। जहाँ विश्वमूर्ति हरि ने मधुदैत्य का वध किया था। वहाँ भगवान का निवास तथा उनका आविर्भाव हुआ था। हे राजश्रेष्ठ ! जो मधुवन में यमुनाजल का आश्रय

सर्वेषां नृप ! सिद्धिः स्यात् तस्मिन् मधुवने नृणाम् ।
तपसा भक्तियुक्तेन स्नानमात्रेण कर्मणा ॥ २०१ ॥
अहो मधुवनं पुण्यं यत्र रामः सहानुजः ।
करोति कर्म लोकानां हिताय च मनीषिणाम् ॥ २०२ ॥
मर्दितो यत्र कृष्णेन चोग्रसेनात्जोऽसुरः ।
पावितः स्पर्शमात्रेण गतिं नीतश्च योगिनाम् ॥ २०३ ॥
तस्मिन् मधुवने राजन् दुर्घटं किं हरिप्रिये ।
वक्तुं नामानि तीर्थानां शक्यन्ते न मयाधुना ॥
तस्मिन् मधुवने यानि माहात्म्यञ्च नृपोत्तम ॥ २०४ ॥
अहो मधुवनं दृष्टं श्रुतं वा तत् सुसेवितम् ।
स्थितं वा यैस्तु सुचिरं धन्यास्ते नृप ! मानवाः ॥ २०५ ॥
किं विद्यया किं तपसा किं ज्ञानेन च कर्मणा ।
येषां वासो मधुवने नाभून्नृप ! नराधमाः ॥ २०६ ॥

कर स्नान करता है, उसने समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया तथा वह निश्चय समस्त तीर्थ फल लाभ कर लेता है। हे राजन्! उस मधुवन में भक्तियुक्त तपस्या, कर्म्म तथा स्नान मात्र से समस्त मनुष्यों की सिद्धि होती है। अहो मधुवन परम पवित्र है, जहाँ श्रीरामजी-अनुज श्रीकृष्ण के साथ मनीषि लोगों के हित के लिए विविध कर्म्म करते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण ने उग्रसेन पुत्र असुर कंस का वध करके अपने स्पर्शमात्र से पवित्र कर योगियों की पवित्र परमागति का प्रदान किया। हे राजन् ! हरिप्रिय उस मधुवन में यह कुछ दुर्घट नहीं है तथा मैं भी वर्त्तमान में मौजूद तीर्थों का नाम नहीं कह सकता है। हे राजश्रेष्ठ वहाँ के तीर्थों के माहात्म्य भी मुझसे नहीं कहा जा सकता है। अहो जिन्होंने मधुवन का दर्शन-श्रवण-सुसेवन तथा निवास किया है वे मनुष्य चिरकाल पर्य्यन्त धन्य हैं। जिनका मधुवन में निवास

तत्र आदिवाराहे-

तत्र मध्ये तु तत्स्थानमर्द्धचन्द्रव्यवस्थितम्

तत्र वै वासिनो लोका मुक्तिं यान्ति न संशयः ।। २०७ ।।

अर्द्धचन्द्रे तु यः स्नानं करोति नियताशनः ।

तेनैव चाक्षया लोकाः प्राप्ताश्चैव न चान्यथा ।। २०८ ।।

अर्द्धचन्द्रे मृता ये च मम लोकं व्रजन्ति ते ।। २०६ ।।

अन्यत्र तु मृता ये च अर्द्धचन्द्रे कृतक्रियाः ।।

तेऽपि मुक्तिं गमिष्यन्ति दाहादिकरणैर्युताः ।। २१० ।।

यावदस्थीन्यर्द्धचन्द्रे यस्य तिष्ठन्ति देहिनः ।

तावत् स पापकर्त्तापि ब्रह्मलोके महीयते ।। २११ ।।

अथ कालविशेषे फलविशेषः-

तत्र कार्त्तिकस्य शुक्लाष्टम्यां स्कान्दे मथुराखण्डे-

सम्वत्सरान्तोर्ज्जमासे सिताष्टम्यां प्रयत्नतः ।

यात्रां मधुवनस्यास्य कुर्वन्ति हि तपोधनाः ।। २१२ ।।

नहीं है उनका विद्या, तपस्या, ज्ञान, कर्मादिक से क्या है। अर्थात् कुछ नहीं है ।। १६८-२०६ ।।

मधुवन के मध्यस्थल का माहात्म्य आदिवाराह में-

मधुवन के मध्यस्थल में अर्द्धचन्द्र व्यवस्थित तीर्थ है। वहाँ के वास करने वाले मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं इसमें कोई सशय नहीं है। जो नियत भोजनादि से अर्द्धचन्द्र में स्नान करता है वह अक्षयलोक को प्राप्त करता है। जो अर्द्धचन्द्र में मृत्यु प्राप्त होते हैं वे मेरे लोक को गमन करते हैं। यदि अन्यत्र मृत्यु प्राप्त किसी का अर्द्धचन्द्र में देहादि कर्म्म किया जाता है तो वह भी मुक्ति प्राप्त होता है। अर्द्धचन्द्र में किसी की अस्थि जब तक रहती है यदि वह पापी हो ता भी ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।। २०७-२११ ।।

तत्र नवम्यां, आदिवाराहे–

कुमुदस्य तु मासस्य मथुरायां वसुन्धरे ।
नवम्यां प्रदक्षिणं कृत्वा पूतो भवति पातकात् ॥ २१३ ॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च गोघ्नो भग्नव्रतस्तथा ।
मथुरां प्रदक्षिणीकृत्य सर्वबंधात् प्रमुच्यते ॥ २१४ ॥
एवं प्रदक्षिणां कृत्वा नवमीं शुक्लकौमुदीम् ।
सर्वान् कुलान् समादाय विष्णुलोके महीयते ॥ २१५ ॥
क्रमतः पादविन्यासा यावन्तः सर्वतो दिशः ।
तावन्तः कुलसम्भूताः सूर्ये तिष्ठन्ति शाश्वते ॥ २१६ ॥
अन्यदेशागतो दूरात् परिक्रामति यो नरः ।
तस्य संस्पर्शनादेव पूताः स्युर्गतकल्मषाः ॥ २१७ ॥
श्रुतो यैस्तु विदूरस्थैः कृतयात्रो नरो नरैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ २१८ ॥

अब काल विशेष में फल विशेष कहते हैं—पहले कार्तिक शुक्लाष्टमी का फल सुनो, स्कन्धपुराण के मथुराखण्ड में कहा है—प्रतिवर्ष कार्तिक मास की शुक्लाष्टमी में परम यत्न के साथ साधु-तपस्वीगण मधुवन की यात्रा करते हैं ॥ २१२ ॥ कार्त्तिक शुक्लानवमी में यात्रा यथा-आदिवाराह में कहा है-हे वसुन्धरे! कार्त्तिक मास नवमी में मथुरा की प्रदक्षिणा करने पर मनुष्य पापों से पवित्र हो जाता है। ब्रह्महननवाला, सुरापेयी, गोघातक, भ्रूणहत्यारी मनुष्य मथुरा की प्रदक्षिणा करके समस्त बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार कार्तिक शुक्ला नवमी में प्रदक्षिणा करने पर मनुष्य समस्त कुल के साथ विष्णुलोक को जाता है। मथुरा में जितने पादक्षेपण होते हैं उन संख्यानुसार उतने कुल के अपने व्यक्ति जब तक दिशाएँ हैं तब तक सूर्य

मथुरायां नरो गत्वा दृष्ट्वा देवं स्वयम्भुवम् ।
प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तत्पुण्यं लभते हि सः ॥ २१६ ॥

अथ श्रीजन्मस्थानमाहात्म्यं, स्कान्दे–

जपोपवासनिरतो मथुरायां षडानन !।
जन्मस्थानं समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२० ॥

अथ कार्त्तिके माहात्म्यं पाद्मे–

कार्त्तिके जन्मसदने केशवस्य च ये नराः ।
सकृत् प्रविष्टाः श्रीकृष्णं ते यान्ति पदमव्ययम् ॥ २२१ ॥

तत्रैव प्रबोधन्याम्

एकैवैकादशी कृष्णजन्मगेहे कृता नरैः ।
ततोऽधिकं प्रकर्त्तव्यं लोके किंचिन्न विद्यते ॥ २२२ ॥

लोक में रहते हैं । जो मनुष्य दूर से (अन्य देश से) आकर परिक्रमा कर चला जाता है उस व्यक्ति का अन्यत्र मनुष्य सब स्पर्श पाकर पवित्र तथा निष्पाप हो जाते हैं । यदि कोई मथुरा की यात्रा करके अन्यत्र दूर देश में चला जाता है तथा उसके विषय को अन्य मनुष्य सुनते हैं वे भी समस्त पापों से निर्मुक्त होकर परागति को प्राप्त करते हैं । मथुरा में जाकर यदि मनुष्य स्वयंभुव देव का दर्शन करता है तो प्रदक्षिणा करने पर जो पुण्य है उस पुण्य को प्राप्त होता है ॥ २१३-२१६ ॥

अब जन्मस्थानमाहात्म्यका वर्णन स्कन्दपुराण में कहा है–हे षडानन ! मथुरा में जन्म स्थान प्राप्त होकर जप-उपवास–पारायण करने पर समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं । पद्मपुराण के कार्तिक माहात्म्य कहा है–कार्त्तिक में जन्मस्थान तथा केशव स्थान में जो एक बार भी प्रविष्ट होते हैं वे अवश्य ही परम अव्यय कृष्ण के निकट आते हैं ॥ २२०-२२१ ॥

रात्रौ जागरणं तत्र प्रीत्या कुर्वन्ति ये नराः ।
संसारमोहस्वप्रान्ते सदा जाग्रति जाग्रति ॥ २२३ ॥
अन्यत्रापि प्रिया विष्णोर्जागरे स्यात् प्रबोधनी ।
किं पुनर्मथुरायां सा ततो वै जन्म सद्मनि ॥ २२४ ॥

अथ श्रीकेशवस्य माहात्म्यं आदिवाराहे--

प्रदक्षिणी कृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
प्रदक्षिणीकृतो येन मथुरायान्तु केशवः ॥ २२५ ॥

इहजन्मकृतं पापमन्यजन्मकृतञ्च यत् ।
तत्सर्वं नश्यते शीघ्रं कीर्त्तने केशवस्य च ॥ २२६

तत्रैव सुप्तोत्थितस्य केशवस्य दर्शनफलम् आदिवाराहे--

सुप्तोत्थितन्तु वसुधे दृष्टं यैर्मुखपङ्कजम् ।
सप्त जन्म कृतं पापं तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ २२७ ॥

पद्मपुराण के कार्त्तिक माहात्म्य में प्रबोधनी उपलक्ष में कहा है—यदि श्रीकृष्ण के जन्मस्थान पर मनुष्यों के द्वारा एक प्रबोधनी एकादशी की जाती है तो उससे अधिक इस लोक में कुछ नहीं है। जो मनुष्य मथुरा में कृष्ण-जन्मस्थल पर प्रबोधनी जागरण प्रीति के साथ करते हैं तो वे संसार रूप मोहनिद्रा से निरन्तर जाग्रत रहते हैं, जाग्रत रहते हैं। अन्यत्र विष्णुप्रिया प्रबोधनी जागरण में महान् फल देने वाली होती है, परन्तु यदि वह प्रबोधनी मथुरा में उसमें फिर जन्म-स्थान पर होती है तो क्या कहना है ॥ २२२-२२४ ॥

अब केशव भगवान के माहात्म्य आदिवाराह में-जिसने मथुरा में केशवजी की प्रदक्षिणा की है उसने सप्तद्वीप पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर ली है। केशवजी के कीर्त्तन से इस जन्म के किये हुए पाप तथा अन्य जन्म के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २२५-२२६

सुप्तोत्थितं हरिं दृष्ट्वा मथुरायां वसुन्धरे ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्जायते स चतुर्भुजः ॥२२८॥

पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये—

सुप्तमुत्थाप्य गोविन्दं तन्मुखं सूतिकागृहे ।
पश्यन्ति कृतपुण्या ये तेषां किं भाग्यमुच्यते ॥२२९॥

विष्णुपुराणे षष्ठेऽंशे—

ऊर्ज्जस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ॥२३०॥

अथ श्री भगवन्मूर्त्तीनां माहात्म्यम्, आदिवाराहे—

दीर्घविष्णुं समालोक्य पद्मनाभं स्वयम्भुवम्
मथुरायां सकृद्देवि सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥२३१॥

मथुरा में सुप्तोत्थित केशव जी के दर्शन का फल आदिवाराह में कहा है—हे वसुधे ! सुप्तोत्थित भगवान् केशव जी के मुख पंकज को जिन्होंने देखा है उनके सात जन्म के किये हुए पाप उसी क्षण में नाश होगये हैं। हे वसुन्धरे ! जो सुप्तोत्थित श्रीहरि का मथुरा में दर्शन करता है उसका फिर पुनर्जन्म नहीं है तथा वह चतुर्भुज रूप में जन्म लेता है ॥२२७–२२८॥

पद्मपुराण के कार्तिक माहात्म्य में कहा है—कृत-पुण्य जो सुप्त गोविन्द को उठाकर उनके मुखारबिन्द का दर्शन करते हैं उनके भाग्य राशि का तो क्या कहना है ॥२२९॥ विष्णुपुराण के षष्ठ अंश में कथन है—कार्तिक शुक्ल द्वादशी में यमुना जल में स्नान कर मथुरा में श्रीहरि का दर्शन करने पर परमागति प्राप्त होता है ॥२३०॥

अनन्तर भगवन्मूर्ति का माहात्म्य आदिवाराह में—

हे देवि ! मथुरा में एक बार मात्र दीर्घविष्णु तथा स्वयंभुव पद्मनाभ का दर्शन करने पर समस्त अभीष्ट प्राप्त होता है, और

तथा—

विश्रान्तिसंज्ञकं दृष्ट्वा दीर्घविष्णुञ्च केशवम् ।
सर्वेषां दर्शनं पुण्यमेभिर्दृष्टैः फलं लभेत् ॥२३२॥
उदये मामकं तेजः सदा विश्रान्तिसंज्ञके ।
मध्यान्हे मामकं तेजो दीर्घविष्णौ व्यवस्थितम् ॥
केशवे मामकं तेजो दिवाभागे चतुर्थके ॥२३३॥

अथ श्री कृष्णपरिवाराणाम्-

एकानंशां ततो देवीं यशोदां देवकीं तथा ।
महाविद्येश्वरीं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२३४॥

अथ श्रीभूतेश्वरस्य-

मथुरायाञ्च देव त्वं क्षेत्रपालो भविष्यसि ।
त्वयि दृष्टे महादेव मम क्षेत्रफलं लभेत् ॥२३५॥
दृष्ट्वा भूतपतिं देवं वरदं पापनाशनम् ।
तेन दृष्टेन वसुधे माथुरं फलमाप्नुयात् ॥२३६॥

भी कहा है-विश्रान्ति तीर्थ, दीर्घविष्णु तथा केशवजी इन तीनों के दर्शन से समस्त दर्शन पुण्यफल प्राप्त होता है । सूर्योदय के समय मेरा तेज सर्वदा विश्रान्ति तीर्थ में इस प्रकार मध्यान्ह समय मेरा तेज दीर्घविष्णु में तथा दिवा के चतुर्थ भाग में मेरा तेज केशव भगवान् में ठहरता है ॥२३१-२३३॥

अब श्रीकृष्ण के परिवारों का माहात्म्य-

हे देवि ! एकानंशा देवी, यशोदा, देवकी तथा महाविद्येश्वरी इनका दर्शन से ब्रह्माहत्या से मुक्त होते हैं ॥२३४॥

अब भूतेश्वर महादेव का माहात्म्य-

हे देव तुम मथुरा में क्षेत्रपाल बनोगे । तुम्हारा दर्शन करने पर मनुष्य मेरा क्षेत्रफल लाभ करता है । जिसने देवदेव, वरद, पापनाशन भूतपति का दर्शन किया है वह मथुरा दर्शन फल लाभ

निर्वाणखण्डे-

यत्र भूतेश्वरो देवो मोक्षदः पापिनामपि ।
मम प्रियतमो नित्यं देवो भूतेश्वरः परः ॥२३७॥
कथं वा मयि भक्तिं स लभतां पापपुरुषः ।
यो मदीयं परं भक्तं शिवं सम्पूजयेन्नहि ॥ २३८ ॥
मन्मायामोहितधियः प्रायस्ते मानवाधमाः ।
भूतेश्वरं ये स्मरन्ति न नमन्ति स्तुवन्ति वा ॥ २३९ ॥

अथ श्रीविश्रान्तिमाहात्म्यं-स्कान्दे मथुराखण्डे-

तत्र तीर्थं महाराज ! विश्रान्ति लोकविश्रुतम् ।
भ्रमित्वा सर्वतीर्थानि विश्रान्तिं यान्ति सात्वताः ॥ २४०

तत्रैव बदरीमाहात्म्ये—

विश्रान्तितीर्थे विधिवत् स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
पितॄनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रपद्यते ॥ २४१ ॥

करता है ॥ निर्वाणखण्ड में कहा है-जहाँ भूतेश्वर महादेवजी पापियों को मोक्ष देने के लिये विराजमान हैं। देवदेव भूतेश्वर मेरे नित्य प्रियतम हैं। जो मेरा परम भक्त भूतेश्वर शिवजी की पूजा नहीं करता है वह पापात्मा किस प्रकार मेरी भक्ति लाभ कर सकता है। जो भूतेश्वर का स्मरण, नमन, स्तवन नहीं करते, वे सब मेरी माया से मोहित बुद्धि वाले अधम मनुष्य माने जाते हैं ॥ २३५-२३९ ॥

अब श्री विश्रान्तिमाहात्म्य-

स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में कहा है-हे महाराज ! वहाँ लोक-विश्रुत विश्रान्ति तीर्थ है। सात्वतगण समस्त तीर्थ भ्रमण कर विश्रान्ति तीर्थ में जाते हैं ॥ २४० ॥

वहाँ बदरीमाहात्म्य में कहा है—विश्रान्ति तीर्थ में विधि-पूर्वक स्नान कर यदि पितृ उद्देश्य में तिलोदक दान किया जाता

यदि कुर्यात् प्रमादेन पातकं तत्र मानवः ।
विश्रान्तिस्नानमात्रेण भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ २४२ ॥

सौरपुराणे-

ततो विश्रान्तितीर्थाख्यं तीर्थमंहोविनाशनम् ।
संसारमरुसञ्चारक्लेशविश्रान्तिदं नृणाम् ॥ २४३ ॥
तत्र तीर्थे कृतस्नानो योऽर्च्चयेदच्युतं नरः ।
स मुक्तो भवसन्तापादमृतत्वाय कल्पते ॥ २४४ ॥

पाद्मे यमुनामाहात्म्ये---

कलिन्दपर्वतोद्भेदे मथुरायां तथा पुरि ।
प्रत्यङ्मुख्याञ्च शौकर्य्यां भागीरथ्याश्च सङ्गमे ॥ २४५ ॥
फलमुत्तरकूलोक्तं तत्कालिन्द्यां शताधिकम् ।
तदेव कोटिगुणितं विश्रान्तौ कथ्यते बुधैः ॥ २४६ ॥

है तब नरक से विष्णुलोक को प्राप्त करता है। यदि मनुष्य प्रमाद से पातक करता है तो विश्रान्ति तीर्थ में स्नान मात्र से उसके पाप भस्म हो जाते हैं। सौरपुराण में कहा है-अनन्तर महान् पाप विनाश करने वाला विश्रान्ति नामक तीर्थराज है। जो संसार में मरुभूमि सञ्चरणकारी मनुष्यों के क्लेश को अन्त करने वाला है। जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करके अच्युत की अर्च्चना करता है वह भव सन्ताप से मुक्त होकर मोक्षामृत के लिए योग्य बनता है॥ पद्मपुराण के यमुना-माहात्म्य में कहा है-कलिन्दपर्वत के उद्भेदस्थल पर तथा मथुरापुरी में, पश्चिममुखी शौकरी क्षेत्र तथा भागीरथी संगमस्थल पर क्रमतः अधिक फल कहा जाता है। उस फल के शताधिक यमुना में तथा यमुना से कोटिगुण फल विश्रान्ति तीर्थ में है ऐसा पण्डितों से कहा जाता है। आदिवाराह में कहा है—हे देवि! विश्रान्ति नामक तीर्थ तीन लोक में घोषित हैं। जहाँ स्नान करने पर मनुष्य मेरे

आदिवाराहे—

विश्रान्तिसंज्ञकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ।। २४७ ।।
गङ्गा शतगुणं प्रोक्तं यत्र केशी निपातितः ।
केश्याः शतगुणं प्रोक्तं यत्र विश्रामितो हरिः ।। २४८ ।।
अर्द्धचन्द्राद् विशेषोऽस्ति तीर्थे विश्रान्तिसंज्ञके ।
दाहादिकरणे तत्र गर्द्दभोऽपि चतुर्भुजः ।। २४९ ।।

तथा स्कान्दे—

वासुदेवो वसेन्नित्यं तस्मिन् स्थाने नृपोत्तम ।
विश्रान्तिं कुरुते येन तेन विश्रान्तिसंज्ञकम् ।। २५० ।।

पुराणान्तरे च—

कल्पकोटिशतेनापि विश्रान्तौ रोम रोमसु ।
क्षौरकर्मणि दाहे च पुनर्जन्म न विद्यते ।। २५१ ।।

अथ गतश्रमदेवमाहात्म्यम्, आदिवाराहे—

सर्वतीर्थेषु यत् स्नानं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं लभते देवि दृष्ट्वा देवं गतश्रमम् ।। २५२ ।।

लोक में पूजित होता है। गङ्गा से शतगुण फल केशीवध स्थल (केशीघाट) में है। उससे शतगुण फल विश्रान्ति में है जहाँ श्रीहरि ने विश्राम किया है। अर्द्ध चंद्र से विश्रांति तीर्थ में विशेषता है। वहाँ दाहादिक कराने पर गर्द्दभ भी चतुर्भुज हो जाता है। हे नृपश्रेष्ठ! वहाँ वासुदेव भगवान नित्य निवास करते हैं। उन्होंने विश्राम किया था इसलिए विश्रान्ति नाम हुआ है। पुराणान्तर में कहा है-विश्रान्ति तीर्थ में मुण्डन तथा दाह-कर्म से पुनर्जन्म नहीं है। शतकोटि कल्प तक रोम रोम से विश्रान्ति प्राप्ति होती है ।। २४१-२५१ ।।

अनन्तर श्री गतश्रमदेव के माहात्म्य आदिवाराह में-हे देवि!

कालत्रयन्तु वसुधे यः पश्यति गतश्रमम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भीरु विष्णुलोके महीयते ॥ २५३ ॥

अथ अर्द्धचन्द्रे स्थितानि मुख्ययमुनातीर्थानि चतुर्विंशतिः—

आदिवाराहे—

अविमुक्ते नरः स्नातो मुक्तिं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
तत्राथ मुञ्चति प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥ २५४ ॥
विश्रान्तिसंज्ञकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥ २५५ ॥
अस्ति चान्यतरं गुह्यं सर्वसंसारमोक्षणम् ।
तस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥ २५६ ॥
प्रयागं नाम तीर्थन्तु देवानामपि दुर्लभम् ।
तस्मिन् स्नातो नरो देवि अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २५७ ॥

समस्त तीर्थों में स्नान का जो फल है वह फल गतश्रमदेव के दर्शन से लाभ होता है। हे वसुधे ! तीन काल में जो गतश्रम भगवान का दर्शन तथा प्रदक्षिणा करता है वह विष्णुलोक में पूजित होता है ॥ २५२-२५३ ॥

अब अर्द्धचन्द्र में स्थित यमुना के चौबीस मुख्य तीर्थ (२४ घाट) का माहात्म्य आदिवाराह में इस प्रकार कथन है:-

(१) अविमुक्त तीर्थ में स्नान करने पर मनुष्य निःसन्देह मुक्ति प्राप्त करता है तथा वहाँ प्राण त्याग से मेरे लोक को गमन करता है ॥ २५४ ॥

(२) विश्रान्ति-विश्रान्ति नामक तीर्थ तीन लोक में विख्यात है जहाँ स्नान करने पर मनुष्य मेरे लोक में पूजित होता है ॥ २५५ ॥

(३) गुह्यतीर्थ—समस्त संसार के मोक्ष देने वाला गुह्यतीर्थ नामक सुन्दर तीर्थ है। हे देवि ! वहाँ स्नान करने पर मनुष्य मेरे लोक में पूजित होता है ॥२५६॥

सौरपुराणे—

ततस्तीर्थ प्रयागाख्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
पितृभ्यस्तत्र यद्दत्तं तदक्षयतरं भवेत् ॥२५८॥
तत्तीर्थं सेवमानस्य कृष्णञ्च जगतां गुरुम् ।
निःसंशयं मनुष्यस्य न पुनर्जन्मसम्भवः ॥२५६॥

आदिवाराहे—

तथा कनखलं तीर्थं गुह्यं तीर्थं परं मम ।
स्नानमात्रेण तत्रापि नाकपृष्ठे स मोदते ॥२६०॥
अस्ति क्षेत्रं परं गुह्यं तिन्दुकं नाम नामतः ।
तस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥२६१॥
ततः परं सुर्य्यतीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् ।
वैरोचनेन वलिना सुर्य्यस्त्वाराधित पुरा ॥२६२॥
आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसुर्य्ययोः ।
तस्मिन् स्नातो नरो देवि राजसूयफलं लभेत् ॥२६३॥

---

(४) प्रयागराज-प्रयाग नाम से विख्यात देवताओं का दुर्लभ तीर्थ है। हे देवि ! जहाँ स्नान करने पर मनुष्य अग्निष्टोम फल लाभ करता है। सौरपुराण में कहा है-तदनन्तर प्रयाग नामक पाप नाशक पवित्र तीर्थ है। वहाँ पितर के लिये जो दिया जाता है वह अक्षयतम होजाता है। उस तीर्थ तथा जगत् के गुरु श्री कृष्ण के सेवन से निःसन्देह मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता। ॥२५७-२५६॥

(५) कनखलतीर्थ-आदिवाराह में कहा है-तदनन्तर परम गुह्य तीर्थ कनखल है। वहाँ मनुष्य स्नानमात्र से ही स्वर्गोपरि क्रीड़ा करता है ॥२६०॥

(६) तिन्दुकतीर्थ-तिन्दुक नामक परम गोपनीय तीर्थ है। हे देवि ! वहाँ स्नान करने पर मनुष्य मेरे लोक में पूजित होता है ॥२६१॥

सौरपुराणे-

तत: परं वटस्वामि तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।
वटस्वामीति विख्यातो यत्र देवो दिवाकर: ॥२६४॥
तत् तीर्थञ्चैव यो भक्त्या रविवारे निषेवते ।
प्राप्नोत्यारोग्यमैश्वर्य्यमन्ते च गतिमुत्तमाम् ॥२६५॥

आदिवाराहे-

यत्र ध्रुवेन सन्तप्तमिच्छया परमं तप: ।
तत्रैव स्नानमात्रेण ध्रुवलोके महीयते ॥२६६॥
ध्रुवतीर्थे तु वसुधे य: श्राद्धं कुरुते नर: ।
पितृन् सन्तारयेत् सर्वान् पितृपक्षे विशेषत: ॥२६७॥

सौरपुराणे-

ध्रुवतीर्थमितिख्यातं तीर्थं मुख्यं तत: परम् ।
यत्र स्नानवतो मोक्षो ध्रुव एव न संशय: ॥२६८॥

---

(७) सूर्यतीर्थ-उसके पश्चात् समस्त पाप मोचक श्रेष्ठ सूर्यतीर्थ है। यहाँ पहले विरोचन बलि ने सूर्यका आराधन किया था। रविवार-संक्रान्ति-चन्द्र सूर्य ग्रहण के दिन वहाँ स्नान करने पर मनुष्य राजसूय यज्ञ का फल लाभ करता है ॥२६२-२६३॥

(८) वटस्वामी-सौरपुराण में कहा है-तदनन्तर तीर्थों के तीर्थ उत्तम वटस्वामी इस नाम से विख्यात तीर्थ है। जहाँ सूर्यदेव विराजमान हैं। जो रविवार को भक्तिपूर्वक उस तीर्थ का सेवन करता है वह आरोग्य तथा ऐश्वर्य लाभ करता है एवं अन्त काल में परमगति को प्राप्त होता है ॥२६४-२६५॥

ध्रुवतीर्थ जहाँ ध्रुव ने परम तपस्या की इच्छा से तप किया है। मनुष्य वहाँ स्नानमात्र से ध्रुवलोक में प्राप्त होकर पूजित होता है। हे वसुधे! ध्रुवतीर्थ में जो मनुष्य श्राद्ध देता है वह समस्त पितृलोक का उद्धार करता है। विशेषकर के पितृपक्ष में

स्कान्दे मथुराखण्डे-

गयायां पिण्डदानेन यत्फलं हि नृणां भवेत् ।
तस्माच्छतगुणं तीर्थे पिण्डदानात् ध्रुवस्य च ॥२६९॥
ध्रुवतीर्थे जपो होमस्तपो दानं समर्च्चनम् ।
सर्वतीर्थाच्छतगुणं नृणां तत्र फलं लभेत् ॥२७०॥

आदिवाराहे-

दक्षिणे ध्रुवतीर्थस्य ऋषितीर्थं प्रकीर्त्तितम् ।
तत्र स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥२७१॥

स्कादे मथुराखण्डे-

तस्मिन् मधुवने पुण्यमृषितीर्थं हरेः प्रियम् ।
स्नानमात्रेण भूपाल हरौ भक्तिः परा भवेत् ॥२७२॥
दक्षिणे ऋषितीर्थस्य मोक्षतीर्थं वसुन्धरे ।
स्नानमात्रेण वसुधे मोक्षं प्राप्नोति मानवः ॥२७३॥

श्राद्धादि विधि अत्युत्तम है । सौरपुराण में कहा है- ध्रुवतीर्थ इस नाम से विख्यात परम मुख्य तीर्थ है । जहाँ स्नान करने वाले का ध्रुव की भाँति निःसंदेह मोक्ष होता है । स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में कहा है-गया पिण्डदान से मनुष्यों का जो फल है उससे शतगुण अधिक फल ध्रुवतीर्थ में पिण्डदान करने पर है ! ध्रुवतीर्थ में जप-होम-तपस्या-दान-अर्चन मनुष्यों के लिये समस्त तीर्थों से शतगुण अधिक फल है ॥२६६-२७०॥

(१०) ऋषितीर्थ-ध्रुवतीर्थ के दक्षिण में ऋषितीर्थ प्रकीर्त्तित है, वहाँ मनुष्य स्नान करके मेरे लोक में पूजित होता है ॥ स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में कहा है-उस मधुवन में हरि के प्रिय पवित्र ऋषितीर्थ है । स्नानमात्र से वहाँ मनुष्य श्रीहरि में परमाभक्ति का लाभ करता है ॥२७१-२७२॥

(११) ऋषितीर्थ के दक्षिण में मोक्षतीर्थ है। हे वसुधे ! वहाँ

आदिवाराहे–

तत्रैव कोटितीर्थन्तु देवानामपि दुर्लभम् ।
तत्र स्नानेन दानेन मम लोके महीयते ॥२७४॥
तत्रैव वोधितीर्थन्तु पितृणामपि दुर्लभम् ।
पिण्डं दत्वा तु वसुधे पितृलोकं स गच्छति ॥२७५॥
द्वादशैतानि तीर्थानां देवानां दुर्लभानि च ।
तेषां स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२७६॥
उत्तरे त्वसिकुण्डाच्च तीर्थन्तु नवसंज्ञकम् ।
नवतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥२७७॥
ततः संयमनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तत्र स्नातो नरो देवि मम लोकं स गच्छति ॥२७८॥
धारासम्पातने स्नात्वा नाकपृष्ठे स मोदते ।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् ममलोकं स गच्छति ॥२७९॥

स्नानमात्र से मनुष्य मोक्ष प्राप्त होता है ॥२७३॥

(१२) कोटितीर्थ–आदिवाराह में कहा है–वहाँ देवताओं को भी दुर्लभ कोटितीर्थ है । वहाँ स्नान-दान से मनुष्य मेरे लोक में पूजित होता है ॥२७४॥

(१२) वोधतीर्थ–वहाँ पितरों के लिये दुर्लभ वोधितीर्थ है, हे वसुधे ! वहाँ पिण्डदान देकर मनुष्य पितृलोक को गमन करता है ॥२७५॥ ये बारह तीर्थ देवताओं के भी कठिन हैं । उनके स्मरणमात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होता है ॥२७६

(१३) नवतीर्थ–असिकुण्ड से उत्तर में नव नामक तीर्थ है । नवतीर्थ से श्रेष्ठ तीर्थ न हुआ न होगा ॥२७७॥

(१४) संयमनतीर्थ–तदनन्तर संयमन नामक तीन लोक में प्रसिद्ध तीर्थवर है । हे देवि ! वहाँ स्नान करने पर मनुष्य मेरे लोक में आता है ॥२७८॥

अतः परं नागतीर्थं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
यत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥२८०॥
घण्टाभरणकं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् ।
यस्मिन् स्नातो नरो देवि सूर्य्यलोके महीयते ॥२८१॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रह्मलोकेऽति विश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नियतो नियतासनः ।
ब्रह्मणा समनुज्ञातो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८२॥
सोमतीर्थे तु वसुधे पवित्रे यमुनाम्भसि ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत सर्वकर्मप्रतिष्ठितम् ।
मोदते सोमलोके तु इदमेव न संशयः ॥२८३॥

---

(१५) धारासंपातन-धारा संपातन में स्नान कर मनुष्य स्वर्ग लोक में गमन करता है, यदि यहाँ प्राणत्याग करता है तो मेरे लोक में आता है ॥२७९॥

(१६) नागतीर्थ-तदनन्तर तीर्थों से भी उत्तम तीर्थ नागतीर्थ है। जहाँ स्नान करने पर मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं तथा मरने पर उनका पुनर्जन्म नहीं है ॥२८०॥

(१७) घण्टाभरणक-समस्त पापों के मोचक घण्टाभरणक नामक तीर्थ है, हे देवि ! जहाँ स्नान करने पर मनुष्य सूर्यलोक में पूजित होता है ॥२८१॥

(१८) तदनन्तर तीर्थों में उत्तम तीर्थ, ब्रह्मलोक में अति प्रसिद्ध ब्रह्मतीर्थ है। वहाँ संयत चित्त तथा सुस्थिर आसन से रह कर स्नान तथा पान करने पर मनुष्य ब्रह्मा के द्वारा स्वागत प्राप्त होकर विष्णुलोक में जाता है ॥२८२॥

(१९) सोमतीर्थ-हे वसुधे ! सोमतीर्थ पर पवित्र यमुना जल में अभिषेक करना चाहिये, उससे समस्त कर्म प्रतिष्ठित होता है। वह मनुष्य सोमलोक में निःसन्देह प्रसन्न प्राप्त होता है ॥२८३॥

सरस्वत्याश्च पतनं सर्वपापहरं शुभम् ।
तत्र स्नात्वा नरो देवि अवर्णोऽपि यतिर्भवेत् ॥२८४॥
चक्रतीर्थं च विख्यातं माथुरे मम मण्डले ।
यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
स्नानमात्रेण मनुजो मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२८५॥
दशाश्वमेधमृषिभिः पूजितं सर्वदा पुरा ।
तत्र ये स्नान्ति मनुजास्तेषां स्वर्गो न दुर्लभम् ॥२८६॥
तीर्थन्तु विघ्नराजस्य पुण्यं पापहरं शुभम् ।
तत्र स्नातं तु मनुजं विघ्नराजो न पीडयेत् ॥२८७॥
ततः परं कोटितीर्थं तीर्थानां परमं शुभम् ॥
तत्रैव स्नानमात्रेण गवां कोटिफलं लभेत् ॥ २८८ ॥
मथुराखण्डमते मथुरा विश्रान्तिं बिना चतुर्विंशतितीर्थवत्त्वम्

---

(२०)सरस्वतिपतन-सरस्वतिपतन तीर्थ समस्त पापहारक शुभमय है। हे देवि ! जहाँ स्नान करने पर अछूत भी सन्यासी की भाँति पूजित होता है अर्थात् उसमें यतित्व आ जाता है ॥२८४॥

(२१)चक्रतीर्थ-मेरे मथुरामण्डल में चक्रतीर्थ अत्यन्त विख्यात है। जो वहाँ तीन रात्रि उपवास करके स्नान करे तो वह स्नानमात्र से ब्रह्महत्या पाप से मुक्त होता है ॥२८५॥

(२२)दशाश्वमेधघाट-पहले ऋषियों ने निरन्तर दशाश्वमेध तीर्थ का पूजन किया है। वहाँ जो स्नान करते हैं उन मनुष्यों के लिये स्वर्ग दुर्लभ नहीं है ॥२८६॥

(२३) गणेशतीर्थ-विघ्नराज गणेशजी के तीर्थ पवित्र, पापहारक तथा मंगलमय है। वहाँ स्नान करने वाले मनुष्य को गणेश जी पीड़ा नहीं देते हैं ॥२८७॥

(२४)कोटितीर्थ-उसके अनन्तर तीर्थोंके तीर्थ, परम शुभमय कोटि तीर्थ है वहाँ स्नानमात्र से कोटि गोदान फल प्राप्त होता है ॥२८८

तथाहि—

चतुर्विंशतितीर्थानि तत्तीर्थाद्दक्षिणोत्तरे ।
दशाश्वमेधपर्य्यन्तं मोक्षान्तञ्च युधिष्ठिर ! ॥ २८९ ॥

अथ अत्रस्य परमप्रसिद्धतीर्थानां माहात्म्यं तत्र गोकर्णस्य सौरपुराणे-

ततो गोकर्णतीर्थाख्यं तीर्थं त्रिभुवनश्रुतम् ।
विद्यते विश्वनाथस्य विष्णोरत्यन्तवल्लभम् ॥२९०॥

अथ श्रीकृष्णगङ्गायाः, आदिवाराहे—

पञ्चतीर्थाभिषेकाच्च यत्फलं लभते नरः ।
कृष्णगङ्गा दशगुणं दिशते तु दिने दिने ॥२९१॥

वैकुण्ठस्य—

वैकुण्ठतीर्थे यः स्नाति मुच्यते सर्वपातकैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२९२॥

मथुराखण्ड के मत में मथुरा विश्रान्तितीर्थ के बिना चौबीस तीर्थ विशिष्ट है ऐसा कहा गया है । हे युधिष्ठिर ! उस विश्रान्ति तीर्थ के दक्षिण एवं उत्तर में चौबीस तीर्थ हैं । अर्थात् दक्षिण में बारह उत्तर में बारह हैं । दक्षिण में दशाश्वमेध पर्यन्त तथा उत्तर में मोक्षतीर्थ पर्यन्त हैं ॥२८९॥

अनन्तर मथुरापुरी में परम प्रसिद्ध तीर्थों के माहात्म्य वर्णन करते हैं-पहले गोकर्णतीर्थ का माहात्म्य सौरपुराण में-अनन्तर विश्वनाथ के गोकर्णतीर्थ नामक त्रिभुवन विख्यात तीर्थराज विराजमान है जो विष्णु का अत्यन्त प्रियतीर्थ है ॥२९०॥

कृष्णगङ्गा का माहात्म्य आदिवाराह में-

मनुष्य पञ्चतीर्थ अभिषेक से जो फल प्राप्त करता है उस फल के प्रतिदिन दशगुण अधिक से वह कृष्णगङ्गा तीर्थ प्रदान करता है ॥२९१॥

असिकुण्डस्य—

एका वराहसंज्ञा च तथा नारायणी परा।
वामना च तृतीया वै चतुर्थी लाङ्गली शुभा ॥२६३॥
एताश्चतस्रो यः पश्येत् स्नात्वा कुण्डेऽसिसंज्ञके।
चतुः सागरपर्यन्ता क्रान्ता तेन धरा ध्रुवम्।
तीर्थानां मथुरानाञ्च सर्वेषां फलमश्नुते ॥२६४॥

चतुः सामुद्रिक नाम कूपस्य—

चतुः सामुद्रिकं नाम कूपं लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र स्नातो नरो भद्रे विष्णुना सह मोदते ॥२६५॥

अथ श्रीकालिन्दीमाहात्म्यम्, आदिवाराहे—

गङ्गा शतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले।
यमुना विश्रुता देवि नात्र कार्या विचारणा ॥२६६॥

श्री वैकुण्ठतीर्थ का माहात्म्य—जो वैकुण्ठतीर्थ में स्नान करता है वह समस्त पाप तथा तापों से निर्म्मुक्त होकर ब्रह्मलोक के लिये गमन करता है ॥२६२॥

असिकुण्ड का माहात्म्य-एक तो वाराह संज्ञा, दूसरी नारायणी, तीसरी वामना, चौथी लाङ्गली शुभमयी शक्तियाँ हैं। जो असिकुण्ड में स्नान करके इन देवताओं का दर्शन करता है वह चतुः समुद्र पर्यन्त पृथीवि का राज्य प्राप्त तथा मथुरा के समस्त तीर्थों का फल प्राप्त करता है ॥२६३-२६४॥

चतुः सामुद्रिक नामक कूप का माहात्म्य—चतुः सामुद्रिक नामक कूप लोक में प्रसिद्ध है। हे भद्रे ! वहाँ मनुष्य स्नान कर के विष्णु के साथ आमोद प्राप्त करता है ॥२६५॥

अनन्तर कालिन्दी श्रीयमुना का माहात्म्य आदिवाराह में—हे देवि ! मथुरामण्डल में गङ्गा से शतगुणा महिमा वाली श्री यमुना प्रसिद्धा है इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये ॥२६६॥

तत्र तीर्थानि गुह्यानि भविष्यन्ति ममानघे ।
येषु स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥२९७॥
यमुनासलिले स्नातः शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः ।
समभ्यर्च्याच्युतं सम्यक् प्राप्नोति परमां गतिम् ॥२९८॥

वाराहे—

नदी तत्र वरारोहे शुभा पुण्योज्ज्वलोदका ।
विवश्वतः सुता रम्या यमुना वै भविष्यति ॥२९९॥
सा प्रयागे तु सुश्रोणि ! ब्रह्मक्षेत्रे महारया ।
समेष्यति न सन्देहो गङ्गायास्तदनन्तरम् ॥३००॥

मात्स्ये युधिष्ठिरमार्कण्डेयसम्वादे—

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर !
कीर्त्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥३०१॥
अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम् ॥३०२॥

हे निष्पापे ! उसमें गुह्यतीर्थ समूह मौजूद हैं, हे देवि ! जिनमें स्नान कर मनुष्य मेरे लोक में पूजित होता है । यमुना जल में स्नान कर शुचि तथा जितेन्द्रिय हो अच्युत का सम्यक् अर्चन करने से परमागति को प्राप्त होता है। वाराह पुराण में कहा है–हे वरारोहे ! वहाँ मङ्गलमयी, पवित्र उज्ज्वल जल वाली सूर्यनन्दिनी नदी यमुना प्रकट होगी। हे उत्तम श्रोणिवालि ! वह वेगवती यमुना, प्रयाग, ब्रह्मक्षेत्र उसके पश्चात् गंगा में होकर बहेगी इसमें कोई संदेह नही है । मत्स्यपुराण के युधिष्ठिर मार्कण्डेय संवाद में कहा गया कि हे युधिष्ठिर ! उस यमुनामें स्नान तथा उसके पवित्र जल का पान कर उसका संकीर्तन करने पर मनुष्य पुण्य प्राप्त होता है एवं दर्शन से मङ्गलों का दर्शन करता है, जो पुण्यात्मा अवगाहन तथा पान करता है वह सात कुल

विष्णुधर्मोत्तरे—

यत्र क्वचन कालिन्द्यां कृत्वा श्राद्धं नराधिप ।
अक्षयफलमाप्नोति नाकपृष्ठे स मोदते ॥३०३॥

पद्मपुराणे पातालखण्डे मरीचिसर्गे—

रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्दलक्षणः ।
ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतः स एव यमुना स्वयम् ।
पावनायास्य जगतः सरिद्भूत्वा ससार ह ॥३०४॥

तथा—

पातकी पातकान्मुक्तः पुण्याढ्यः स्यादपातकी ।
फलाभिसन्धिरहितः कालिन्द्यामेव मुच्यते ॥३०५॥
स्नानादि कर्म कालिन्द्यां येन केनापि यत्कृतम् ।
यथावदयथावद्वा तत्साधु फलवद्भवेद् ॥३०६॥
विशेष एव कालिन्द्यां मृतो याति हरेः पदम् ।
मथुरासङ्गतायान्तु हरिरेव भवेन्नरः ॥३०७॥

पर्यन्त उद्धार होजाता है एवं वहाँ प्राण त्याग करने पर परमागति का लाभ करता है। विष्णुधर्मोत्तर में कहा है—हे राजन्! यमुना में जहाँ कहीं भी श्राद्ध करने पर अक्षयफल प्राप्त तथा स्वर्ग में आमोद लाभ करता है। पद्मपुराण के पातालखण्ड मरीचिसर्ग में कथन है कि सच्चिदानन्द लक्षणमय परमाधार स्वरूप जो रस तत्व है तथा उपनिषद् में जो ब्रह्म करके उद्गीत है वह स्वयं यमुना रूप है, जो इस जगत् को पवित्र करने के लिये नदी रूप होकर बह रहा है। और भी कहा, पातकी पातक से मुक्त होकर पुण्यात्मा तथा अपातकी होजाता है। उसकी कोई फलाभिसन्धि (अन्यफल) नहीं होती, वह यमुनामें ही मुक्त होजाता है, यमुनामें यदि विधि से हो किम्वा अविधिसे हो जो भी कार्य कियाजाता है तथा उसका जो फल प्राप्त है वह साधु फल वाला माना जाता

तत्रैव हरगौरीसम्वादे–

ब्रह्मज्ञानेन मुच्यन्ते काश्याञ्च मरणे नराः ।
अथवा स्नानमात्रेण कृष्णायां कृष्णसन्निधौ ॥३०८॥
यमुनाजलकल्लोले क्रीड़ते देवकीसुतः ।
तत्र स्नात्वा महादेवि सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥३०९॥
अहो अभाग्यं लोकस्य न पीतं यमुनाजलम् ।
गो-गोप-गोपिकासङ्गे यत्र क्रीड़ति कंसहा ॥३१०॥

तत्रैव निर्वाणखण्डे-

चिदानन्दमयी साक्षाद् यमुना यमभीतिनुत् ॥३११॥

कालविशेषे तत्र स्नानादिफलम् आदिवाराहे–

ज्यैष्ठस्य शुक्लद्वादश्यां समभ्यर्च्च्य जनार्द्दनम् ।
धन्योऽसौ पिण्डनिर्वापं यमुनायां प्रदास्यति ॥३१२॥

विष्णुपुराणे चाग्निपुराणे–

यमुनासलिले स्नातः पुरुषो मुनिसत्तम ! ।
ज्येष्ठामूलेऽमले पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत् ॥३१३॥

है, वह मनुष्य विशेष करके कालिन्दी में मृत्यु प्राप्त होने पर श्री-हरिपादपद्म लाभ करता है, मथुरा संगम प्राप्त यमुना में कर्मादि करने वाला मनुष्य हरि सदृश होजाता है। पद्मपुराण के हर-गौरी सम्वाद में कहा गया है, मनुष्य काशी में ब्रह्मज्ञान होने पर मुक्त होता है, परन्तु यहाँ यमुना में स्नानमात्र से ही श्रीकृष्ण के निकट गमन करता है यमुना के जल तरंगोंमें देवकीसुत क्रीड़ा करते हैं। हे महादेवि ! वहाँ स्नान करने पर समस्त तीर्थ लाभ होता है, अहो मनुष्य का परम दुर्भाग्य है कि जिसने यमुनाजल का पान नहीं किया। जहाँ कंसनाशन श्रीकृष्ण गो-गोप-गोपिकाओं के साथ निरन्तर क्रीड़ा करते हैं। वहाँ निर्वाणखण्ड में भी कहा है कि यमुना साक्षात् चिदानन्दमयी तथा यम भय नाश करने

समभ्यर्च्चर्याच्युतं सम्यक् मथुरायां समाहितः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यत्याधिकं फलम् ॥ ३१४ ॥

तत्रैव पितृणां वाक्यम्--

कश्चिदस्मत्कुले जातः कालिन्दीसलिलाप्लुतः ।
अर्च्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः ॥ ३१५ ॥
ज्येष्ठामूलामले पक्षे समभ्यर्च्चर्य जनार्दनम् ।
धन्यानां कुलजः पिण्डान् यमुनायां प्रदास्यति॥ ३१६ ॥

वृहन्नारदीये--

ज्यैष्ठे मासि पौर्णमास्यां मूलर्क्षे प्रयतो नरः ।
स्नात्वा च यमुनायां वै मथुरायामुपोषितः ॥ ३१७ ॥

वाली है ॥ २९९-३११ ॥

अब समय विशेष में वहाँ स्नानादिक फल का बर्णन करते हैं। आदिवाराह में कहा है-ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी में जनार्दन का सम्यक् अर्च्चन करके यदि यमुना में पिण्डनिर्वाप (पिण्डदान)करता है तो वह धन्य है ॥ विष्णुपुराण तथा अग्निपुराण में कहा है हे मुनिसत्तम ! मनुष्य यमुना जल में स्नान कर यदि ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी में उपवास के साथ मथुरा पर अच्युत की अर्च्चना करता है तो वह अश्वमेधयज्ञ से अधिक फल लाभ करता ॥ वहाँ पितरों का वचन है कि-कोई हमारे बंश में उत्पन्न होगा जो कि यमुना जल में परिल्पुत स्नान तथा मथुरा में उपवास कर गोविन्द की अर्च्चना करेगा। ज्येष्ठ मास मूला नक्षत्र विशिष्ट अमलपक्ष में जनार्द्दन की अर्च्चना करके यमुना में पिण्ड को देने वाला उत्तम कुल जात कोई विरला होता है ॥ वृहन्नारदीयपुराण में कहा है-ज्येष्ठ मास पौर्णमासी तिथि मूला नक्षत्र में मनुष्य संयत हो मथुरा में उपवास तथा यमुना में स्नान कर गोविन्द-अर्च्चना से जो फल लाभ करता है उसे कहता हूँ, हे द्विजगण !

अभ्यर्च्चर्य विधिना विष्णुं यत्फलं लभते द्विजाः ।
तत्प्रवक्ष्यामि वः सम्यक् शृणुध्वं गदतो मम ॥ ३१८ ॥
जन्मायुतार्ज्जितैः पापैर्मुक्तः कोटिकुलान्वितः ।
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्रैव परिमुच्यते ॥ ३१६ ॥

पद्मपुराणे--

संक्रान्तौ रविवारे च सप्तम्यां वैधृतौ तथा ।
व्यतिपाते च हस्तर्क्षे त्वाष्ट्रे पौष्ये पुनर्व्वसौ ॥ ३२० ॥
एकादश्यां चतुर्दश्यामष्टम्याञ्च विधुक्षये ।
पौर्णमास्याञ्च पूर्वोक्तं फलं शतगुणं भवेत् ॥ ३२१ ॥
तदेव स्यात् कोटिगुणं ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
द्वादश्यामर्च्चयेद्विष्णुमेकादश्यामुपोष्य यः ॥
कालिन्द्यां तस्य सुलभं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ३२२ ॥

स्कान्दे मथुराखण्डे—

यथा स्पर्शमणिस्पर्शाल्लौहं याति सुर्व्णताम् ।
तथा कृष्णाजलस्पर्शात् पापं गच्छति पुण्यताम् ३२३ ॥

मेरे वचन को सुनो । वह कोटि कुल के साथ अयुत जन्म के पापों से मुक्त होकर ब्रह्मपद में जाकर वहाँ निर्म्मुक्त होता है ॥ पद्म-पुराण में कहा है-संक्रान्ति, रविवार, सप्तमी तिथि, वैधृत वेला, व्यतिपात योग, हस्ता-त्वाष्ट्र-पौष्य,-पुनर्व्वसु नक्षत्र, एकादशी, चतुर्द्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पौर्णमासी इन दिनों में पहिले कहा गया फल शतगुण अधिक होता है वह फल चन्द्र-सूर्य्य के ग्रहण में कोटि गुण अधिक माना जाता है । जो यमुना तीर्थ में एकादशी उपवास रहकर द्वादशी में विष्णु की अभ्यर्च्चना करता है उसके लिये विष्णु का परम पद सुलभ है ॥ स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में कहा है-जिस प्रकार स्पर्शमणि के स्पर्श से लौह सुवर्ण हो जाता है ठीक उसी प्रकार यमुनाजल स्पर्श से पाप

अथ माथुरब्राह्मणमाहात्म्यमादिवाराहे--

अनूचो माथुरो यश्च चतुर्वेदस्तथापरः ।
चतुर्वेदं परित्यज्य माथुरं भोजयेद्बुधः ॥ ३२४ ॥

कृषीवलो दुराचारो धर्ममार्गपराङ्मुखः ।
ईदृशोऽपि पूजनीयो माथुरो मम रूपधृक् ॥ ३२५ ॥

माथुराणाञ्च यद् रूपं तन्मे रूपं बसुन्धरे ।
एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥ ३२६ ॥

माथुरा मम पूज्या हि माथुरा मम बल्लभाः ।
माथुरे परितुष्टे वै तुष्टोऽहं नात्र संशयः ॥ ३२७ ॥

भवन्ति सर्वतीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
मङ्गलानि च सर्वाणि यत्र तिष्ठति माथुरः ॥ ३२८ ॥

पुण्य के लिए है अर्थात् पाप पुण्य में परिणत हो जाता है ॥ ३१२-३२३ ॥

अनन्तर माथुर ब्राह्मणों के माहात्म्य कहते हैं आदिवाराह में कहा है--वेद रहित माथुर ब्राह्मण महान् चतुर्वेदी माना जाता है। चतुर्वेदी ब्राह्मणों का त्याग कर माथुर ब्राह्मण को भोजन देवें। मथुरावासी कृषक, दुराचारी, धर्म मार्ग से रहित हो तो भी पूजनीय है। मथुरावासी मेरा स्वरूप माना जाता है। एक माथुर ब्राह्मण को भोजन कराने पर कोटि विप्र को भोजन देने का फल मिलता है। मथुरा निवासी मेरे भी पूजनीय तथा अत्यन्त प्रिय है, मथुरावासी परितुष्ट होने पर मैं परितुष्ट होता हूँ इसमें कोई सन्देह नहीं है। जहाँ माथुर ब्राह्मण ठहरता है वहाँ सर्व मङ्गलमय होता है। वहाँ ही समस्त तीर्थ, समस्त पुण्य-मन्दिर विरजमान होते हैं ॥ ३२४-३२८ ॥

अथ मथुरावासिमाहात्म्यमादिवाराहे--

ये वसन्ति महाभागे ! मथुरामितरे जनाः ।
तेऽपि यान्ति परां सिद्धिं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ३२६ ॥
यस्तत्र निवसेद्देवि संयतात्मा जितेन्द्रियः ।
त्रिकालमपि भुञ्जानो वायुभक्षसमो हि सः ॥ ३३० ॥
मथुरायां महापुर्यां ये बसन्ति शुचिव्रताः ।
बलिभिक्षाप्रदातारो देवास्ते नरविग्रहाः ॥ ३३१ ॥
मथुरावासिनो लोकाः सर्वे ते भक्तिभाजनाः ।
अपि कीटः पतङ्गो वा तिर्य्यग्योनिगतोऽपि वा ॥ ३३२ ॥
तिष्ठेद् युगसहस्रन्तु पादेनैकेन यः पुमान् ।
तस्याधिकं भवेत् पुण्यं मथुरायां निवासिनः ॥ ३३३ ॥
परदाररता ये च ये नरा अजितेन्द्रियाः ।
मथुरावासिनः सर्वे ते देवा नरविग्रहाः ॥ ३३४ ॥

अनन्तर मथुरावासिमाहात्म्य आदिवाराह में—

हे महाभागे ! मथुरा में ब्राह्मण से अतिरिक्त अन्य जो मनुष्य निवास करते हैं वे भी मेरे प्रसाद से परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। हे देवि ! वहाँ संयतात्मा, जितेन्द्रिय जो व्यक्ति निवास करता है, वह यदि तीन बार भोजन करे तो उसे पवनाहारी के समान मानना चाहिए। मथुरा महापुरी में जो शुचिव्रत होकर निवास करते हैं वे मनुष्याकार होने पर भी देवता माने जाते हैं तथा बलि को भी भिक्षा देने में समर्थ होते हैं अथवा बलि की भाँति भिक्षा देने में सामर्थ्य रखते हैं। मथुरा निवासी मनुष्य तथा कीट-पतङ्ग नीच योनिगत प्राणी भी मुक्तिभागी होते हैं। जो व्यक्ति हजार युग पर्य्यन्त एक पाँव से खड़ा होकर तप करता है उसका जो फल लाभ है उससे अधिक फल लाभ मथुरा निवासी का है। मथुरा निवासी यदि परदारगामी तथा अजिते-

सिद्धभूतगणाः सर्वे ये च देवगणा भुवि ।
मथुरावासिनो लोकांस्ते पश्यन्ति चतुर्भुजान् ॥ ३३५ ॥
मथुरायां ये वसन्ति विष्णुरूपा हि ते खलु ।
अज्ञानास्तान्न पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुसः ॥ ३३६ ॥
मथुरायां पुरे यस्तु प्रासादं पुरवासिनाम् ।
कारयित्वा तु मनुजो जायते स चतुर्भुजः ॥ ३३७ ॥

स्कान्दे--

मथुरावासिनो लोकान् मनसापि द्विषन्ति ये ।
न जातु भविता तेषां विरहो नरकैः सह ॥ ३३८ ॥
मथुरावासिनां कुर्वन्त्यपकारान् मनागपि ।
ये लोका नास्ति तेषां हि पुण्यस्यान्तं कथञ्चन ॥ ३३९ ॥

पाद्मे पातालखण्डे--

धन्या माथुरवासास्ते वसन्ति हरिसन्निधौ ।
चतुर्गर्णेश्वरः सोऽयं पिबते यमुनाजलम् ॥ ३४० ॥

न्द्रिय होवें तो भी मनुष्य रूपधारी देवता माने जावेंगे । सिद्ध, भूतगण, देवगण सब मथुरावासियों को चतुर्भुज रूप में दर्शन करते हैं मथुरा में जो निवास करते हैं वे निश्चय विष्णुरूप माने जाते हैं । अज्ञानी उन्हें नहीं देख पाते, केवल ज्ञान चक्षु वाले उनके स्वरूप का दर्शन करते हैं । मथुरापुरी में पुरवासियों को प्रसन्न करने वाला मनुष्य चतुर्भुज स्वरूप में जन्म लेता है ॥ स्कन्दपुराण में कहा है--जो मथुरावासी लोगों को मनसा भी द्वेष करते हैं उनके नरक का विच्छेद नहीं होता है अर्थात् वे निरन्तर नरक भोग करते हैं । मथुरावासी लोगों का जो किञ्चित मात्र भी अपकार करते हैं उनको किसी भी प्रकार पुण्य का स्पर्श तक नहीं है ॥ पद्मपुराण के पातालखण्ड में कहा है--वे मथुरा निवासी धन्य हैं जो श्रीहरि के निकट निवास करते हैं ।

श्वपचाः पावनास्तेऽत्र वसन्ति मथुरापुरे ।
अन्यग्रामस्थविप्राणां मथुरावासिनोऽधिकाः ॥ ३४१ ॥

तत्रैव निर्वाणखण्डे--

मथुरावासिनो धन्या मान्या अपि दिवौकसाम् ।
अगण्यमहिमानस्ते सर्वे एव चतुर्भुजाः ॥ ३४२ ॥
मथुरावासिनां ये तु दोषं पश्यन्ति पामराः ।
ते स्वदोषं न पश्यन्ति जन्ममृत्युसहस्रदम् ॥ ३४३ ॥

अथ द्वादश वनानां माहात्म्यम्--आदिवाराहे मते मधुवनं पुराद्-भिन्नमप्यस्ति । तथाहि--

तेन दृष्टा च सा रम्या वासवस्य पुरी यथा ।
वनैर्द्वादशभिर्युक्ता पुण्या पापहरा शुभा ॥ ३४४ ॥

(१) अस्य वनस्य माहात्म्यम्--

रम्यं मधुवनं नाम विष्णुस्थानमनुत्तमम् ।
यं दृष्ट्वा मनुजो देवि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ३४५ ॥

जो जमुनाजल पान करता है वह भी चारि वर्णों से श्रेष्ठ है। मथुरापुरी में निवास करने वाले श्वपच भी परम पावन हैं। अन्य स्थानों के विप्रों से मथुरावासी अधिक हैं ॥ ३२६-३४३ ॥ पद्मपुराण के निर्वाणखण्ड में भी ऐसा कहा है--मथुरा निवासी धन्य हैं जो देवताओं के भी माननीय हैं। वे सब अगण्य महिमा वाले चतुर्भुज स्वरूप हैं। जो पामर मथुरा निवासियों के दोष को देखते हैं वे हजारों जन्म-मृत्यु देने वाला अपने दोष को नहीं देखते हैं ॥

अब बारह बनों की महिमा कहते हैं--आदिवाराह के मत में मधुवन मथुरापुरी से भिन्न है। जैसा कि कहा है--उसने वह नन्दनवन की भाँति बारह वनों से युक्त, पवित्र, पापनाशनी शुभ रूपा मधुवन को देखा है ॥ ३४४ ॥

(१) इस मधुवन का माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है यथा मधुवन

(२) तालवनस्य आदिवाराहे--

वनं तालवनञ्चैव द्वितीयं वनमुत्तमम् ।
यत्र स्नात्वा नरो देवि कृतकृत्यो हि जायते ॥ ३४६ ॥
तत्र कुण्डं स्वच्छजलं नीलोत्पलविभूषितम् ।
तत्र स्नानेन दानेन वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥ ३४७ ॥

स्कान्दे मथुराखण्डे--

अहो तालवनं पुण्यं यत्र तालैर्हतोऽसुरः ।
हिताय यादवानाञ्च आत्मक्रीड़नकाय च ॥ ३४८ ॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं यत्र कुत्र स्थिते जले ।
स देवत्वमवाप्नोति देहान्ते देवदर्शनः ॥ ३४९ ॥

(३) कुमुदवनस्य आदिवाराहे--

वनं कुमुदवनञ्चैव तृतीयं वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा नरो देवि ! कृतकृत्यो हि जायते ॥ ३५० ॥

नाम से प्रसिद्ध मनोहर, सर्वोत्तम विष्णु के स्थान है। हे देवि ! जिसको देखकर मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है ॥३४५

(२) तालवन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित-तालवन नाम से उत्तम दूसरा बन है। हे देवि ! जहाँ मनुष्य स्नान करने पर कृतकृत्य हो जाता है। वहाँ नील कमलों से विभूषित स्वच्छ जल वाला कुण्ड है, उसमें स्नान दान करने पर वाञ्छित फल प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में--अहो तालवन परम पवित्र है, जहाँ यादवों के हितार्थ तथा अपने क्रीड़ार्थ श्रीकृष्ण के द्वारा तालों से धेनुकासुर हत किया गया था। जो व्यक्ति वहाँ, जहाँ कहीं भी जल में स्नान करता है वह देव शरीर लाभ करता है तथा देहान्त में उसका देवदर्शन होता है ॥ ३४६-३४९ ॥

(३) कुमुदवन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित—तीसरा वन उत्तम कुमुदवन है। हे देवि ! वहाँ मनुष्य जाकर कृतकृत्य हो

(४) काम्यवनस्यादिवाराहे--

चतुर्थं काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा नरो देवि मम लोके महीयते ॥ ३५१ ॥
विमलस्य च कुण्डे तु सर्वपापं विमोच्यते ।
यस्तत्र मुञ्चति प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥ ३५२ ॥

स्कान्दे मथुराखण्डे—

तत्र काम्यवनं राजन् यत्र वाल्ये स्थितो भवान् ।
स्नानमात्रेण सर्वेषां सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३५३ ॥
तत्र कामसरो राजन् गोपिकारमणं सरः ।
तत्र तीर्थसहस्राणि सरांसि च पृथक् पृथक् ॥ ३५४ ॥

(५) वहुलावनस्यादिवाराहे--

पञ्चमं वहुलावनं वनानां वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा नरो देवि अग्निस्थानं स गच्छति ॥ ३५५ ॥

जाता है ॥ ३५० ॥

(४) कामवन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित--चौथा बनों के उत्तम बन काम्यबन है। हे देवि। वहाँ मनुष्य जाने पर मेरे लोक में पूजित हो जाता है। विमलकुण्ड में तो समस्त पाप दूर हो जाते हैं। जो वहाँ प्राणों का त्याग करता है वह मेरे लोक में गमन करता है॥ स्कन्धपुराण के मथुरा खण्ड में कहा है--हे राजन्! वहाँ परम काम्यवन है जहाँ आप वाल्यकाल में रहे थे वहाँ स्नान मात्र से ही सब के सब कामनाओं का फल मिलता है। हे राजन्! वहाँ कामसरोवर तथा गोपिकारमण सरोवर है। उस कामबन में हजारों तीर्थ तथा हजारों सरोवर पृथक् पृथक् रूप से बिराजमान हैं ॥ ३५१-३५४ ॥

(५) वहुलाबन का माहात्म्य आदिवाराह में--पाँचवाँ वनों के उत्तम बन वहुलाबन है। वहाँ जाने पर मनुष्य अग्नि-

स्कान्दे मथुराखण्डे –

बहुला श्रीहरेः पत्नी तत्र तिष्ठति सर्वदा ।
तस्मिन् पद्मवने राजन् बहुपुण्यफलानि च ॥ ३५६ ॥
तत्रैव रमते विष्णुर्लक्ष्म्या सार्द्धं सदैव हि ।
तत्र सङ्कर्षणं कुण्डं तत्र मानसरो नृप ! ॥ ३५७ ॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं मधुमासे नृपोत्तम ! ।
स पश्यति हरिं तत्र लक्ष्म्या सह विशाम्पते ॥ ३५८ ॥

(६) भद्रवनस्यादिवाराहे—

अस्ति भद्रवनं नाम षष्ठ्यन्तु वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा तु वसुधे मद्भक्तो मत्परायणः ॥
तस्य वनप्रभावेण नागलोकं स गच्छति ॥ ३५९ ॥

(७) खदिरवनस्यादिवाराहे–

सप्तमन्तु वनं भूमे खदिरं लोकविश्रुतम् ।
तत्र गत्वा नरो भद्रे मम लोकं स गच्छति ॥ ३६० ॥

लोक प्राप्त करता है ॥ स्कन्धपुराण के मथुराखण्ड में कहा है-- श्रीहरि की पत्नी बहुला वहाँ सर्वदा विराजमान करती है। हे राजन् ! वहाँ पद्मवन है जिसमें बहु पुण्य फल मौजूद है तथा उस में भगवान विष्णु निरन्तर लक्ष्मी के साथ रमण करते हैं, वहाँ संकर्षण कुण्ड तथा मानसरोवर है। हे श्रेष्ठ राजन् ! जो व्यक्ति चैत्र मास में वहाँ स्नान करता है वह वहाँ ही लक्ष्मी के साथ श्रीहरि का दर्शन लाभ करता है ॥ ३५५-३५८ ॥

(६) भद्रवन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित--छटवाँ उत्तम वन भद्रबन है। हे वसुधे ! वहाँ गमन करने पर मनुष्य मेरा भक्त एवं मत्परायण होता है तथा उस वन के प्रभाव से वह नाग-लोक में जा सकता है ॥ ३५९ ॥

(७) खदिरबन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित--हे भूमि !

(८) महावनस्यादिवाराहे-

महावनञ्चाष्टमन्तु सदैव तु मम प्रियम् ।
यस्मिन् गत्वा तु मनुजो इन्द्रलोके महीयते ॥ ३६१ ॥
यमलार्ज्जुनतीर्थञ्च कुण्डं तत्र च वर्त्तते ।
पर्य्यस्तं यत्र शकटं भिन्नभाण्डकुटीघटम् ॥ ३६२ ॥
तत्र स्नानोपवासेन अनन्तं फलमाप्नुयात् ।
तत्र गोपीश्वरो नाम महापातकनाशनः ॥ ३६३ ॥
सप्तसामुद्रिकं नाम कूपन्तु विमलोदकम् ।
देवस्याग्रे तु वसुधे गोपीशस्य महात्मनः ॥
पितरश्चाभिनन्दन्ति पानीयं पिण्डमेव च ॥ ३६४ ॥
सोमवारे त्वमावस्यां पिण्डदानं करोति यः ।
गयापिण्डप्रदानञ्च कृतं नास्त्यत्र संशयः ॥ ३६५ ॥

सातवाँ लोक प्रसिद्ध खदिरबन है। हे भद्रे ! वहाँ जाने पर मनुष्य मेरे लोक को प्राप्त करता है ॥ ३६० ॥

(८) महावन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित-आठवाँ महाबन है जो कि निरन्तर मेरा प्रिय है। जहाँ गमन करने पर मनुष्य इन्द्रलोक में पूजित होता है वहाँ यमलार्ज्जुन नामक तीर्थ कुण्ड रूप में बिराजमान हैं। जिसके चारों ओर टूटे-फूटे वर्त्तन-घड़ों से युक्त शकट स्थान है वहाँ स्नान उपवास से अनन्त फल प्राप्त होता है। वहाँ महान् पातक नाशन गोपीश्वर शिव है तथा उसके समक्ष विमल जल युक्त सप्तसामुद्रिक नामक कूप है जिसका जल प्राप्त करने के लिए तथा जहाँ पिण्ड प्राप्त के लिए पितृगण इच्छा करते हैं। जो सोमवती अमावास्या में वहाँ पिण्डदान करता है उसका गया पिंडदान हो जाता है इसमें संशय नहीं है ॥ ३६१-३६५ ॥

(९) लोहजङ्घ वनस्य आदिवाराहे—

लोहजङ्घवनं नाम लोहजङ्घेन रक्षितम् ।
नवमन्तु वनं देवि सर्वपापप्रनाशनम् ॥ ३६६ ॥

(१०) विल्ववनस्य आदिवाराहे——

वनं विल्ववनं नाम दशमं देवपूजितम् ।
तत्र गत्वा तु मनुजो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३६७ ॥

(११) भाण्डीरवनस्य आदिवाराहे——

एकादशन्तु भाण्डीरं योगिनां प्रियमुत्तमम् ।
तस्य दर्शन मात्रेण नरो गर्भं न गच्छति ॥ ३६८ ॥
भाण्डीरं समनुप्राप्य वनानां वनमुत्तमम् ।
वासुदेवं ततो दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३६९ ॥
तस्मिन् भाण्डिरके स्नातो नियतो नियतासनः ।
सर्वपापविनिमुक्ति इन्द्रलोकं स गच्छति ॥ ३७० ॥

---

(९) लोहजङ्घबन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित–हे देवि ! नवम वन समस्त पापनाशक, लोहजङ्घ से परिरक्षित लोहजङ्घ नामक बन है ॥ ३६६ ॥

(१०) वेलवन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित––दसवाँ बन देवपूजित बेलवन है । वहाँ जाने पर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥ ३६७ ॥

(११) भांडीरबन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित- ग्यारहवाँ योगियों का प्रिय उत्तम भांडीरबन है। उसके दर्शन मात्र से कभी मनुष्य पुनः गर्भ-यन्त्रणा नहीं प्राप्त होता है। बनों के उत्तम बन भांडीर बन का सम्यक् प्राप्त होकर तथा वहाँ भगवान वासुदेव का दर्शन करने से फिर पुनर्जन्म नहीं होता। जो उस भांडीर में संयत आसन होकर नियत रूप से स्नान करता है वह समस्त पाप से विनिम्मुक्त होकर इन्द्रलोक को जा सकता

(९) लोहजङ्घ वनस्य आदिवाराहे—
लोहजङ्घवनं नाम लोहजङ्घेन रक्षितम् ।
नवमन्तु वनं देवि सर्वपापप्रनाशनम् ॥ ३६६ ॥

(१०) बिल्ववनस्य आदिवाराहे—
वनं बिल्ववनं नाम दशमं देवपूजितम् ।
तत्र गत्वा तु मनुजो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३६७ ॥

(११) भाण्डीरवनस्य आदिवाराहे—
एकादशन्तु भाण्डीरं योगिनां प्रियमुत्तमम् ।
तस्य दर्शन मात्रेण नरो गर्भं न गच्छति ॥ ३६८ ॥
भाण्डीरं समनुप्राप्य वनानां वनमुत्तमम् ।
वासुदेवं ततो दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३६९ ॥
तस्मिन् भाण्डिरके स्नातो नियतो नियतासनः ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्ति इन्द्रलोकं स गच्छति ॥ ३७० ॥

---

(९) लोहजङ्घबन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित—हे देवि ! नवम वन समस्त पापनाशक, लोहजङ्घ से परिरक्षित लोहजङ्घ नामक बन है ॥ ३६६ ॥

(१०) बेलवन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित—दसवाँ बन देवपूजित बेलवन है । वहाँ जाने पर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥ ३६७ ॥

(११) भांडीरबन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित- ग्यारहवाँ योगियों का प्रिय उत्तम भांडीरबन है। उसके दर्शन मात्र से कभी मनुष्य पुनः गर्भ-यन्त्रणा नहीं प्राप्त होता है। बनों के उत्तम बन भांडीर बन का सम्यक् प्राप्त होकर तथा वहाँ भगवान वासुदेव का दर्शन करने से फिर पुनर्जन्म नहीं होता। जो उस भांडीर में संयत आसन होकर नियत रूप से स्नान करता है वह समस्त पाप से विनिर्म्मुक्त होकर इन्द्रलोक को जा सकता

(१२) श्रीवृन्दावनस्य आदिवाराहे--

वृन्दावनं द्वादशकं वृन्दया परिरक्षितम् ।
मम चैव प्रियं भूमे सर्वपातकनाशनम् ॥ ३७१ ॥
तत्राहं क्रीडयिष्यामि गोपीगोपालकैः सह ।
सुरम्यं सुप्रतीतञ्च देवदानवदुर्ल्लभम् ॥ ३७२ ॥

स्कान्दे मथुराखण्डे--

ततो वृन्दावनं पुण्यं वृन्दादेवी समाश्रितम् ।
हरिणाधिष्ठितं तच्च ब्रह्मरुद्रादिसेवितम् ॥ ३७३ ॥
वृन्दाबनं सुगहनं विशालं विस्तृतं वहु ।
मुनीनामाश्रमैः पूर्णं वन्यवृन्दसमन्वितम् ॥ ३७४ ॥
यथा लक्ष्मीः प्रियतमा यथा भक्तिपरा नराः ।
गोविन्दस्य प्रियतमं तथा वृन्दवनं भुवि ॥ ३७५ ॥
वत्सैर्वत्सतरीभिश्च साकं क्रीड़ति माधवः ।
वृन्दावनान्तरगतः सरामो बालकैर्वृतः ॥ ३७६ ॥

है ॥ ३६८-३७० ॥

(१२) अब श्री वृन्दावन का माहात्म्य आदिवाराह में वर्णित-- बारह संख्य में वृन्दा से परिरक्षित, मेरा अत्यन्त प्रिय, समस्त पापनाशक वृन्दाबन है। वहाँ मैं गोपी-गोपालों के साथ क्रीड़ा करता हूँ वह स्थान परम सुन्दर, अत्यन्त प्रतीत तथा देवता-दानवों को दुर्ल्लभ है। स्कन्दपुराण के मथुराखंड में कहा है— अनन्तर परम पवित्र, बृन्दादेवी के द्वारा समाश्रित बृन्दाबन है। वह ब्रह्म-रुद्रदिओं से सेवित तथा श्रीहरि के द्वारा अधिष्ठित है। श्री वृन्दाबन अत्यन्त गहन, विशाल, बहुविस्तृत, मुनियों के आश्रम स पूर्ण तथा वन्यमृगादिओं से समन्वित है। जिस प्रकार लक्ष्मी श्रीगोविन्द की अत्यन्त प्रिय है, जैसे कि भक्ति परायण मनुष्य उनको परम प्रिय होते हैं, ठीक उसी प्रकार पृथ्वीमें बृन्दा-

अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्धनो गिरिः ।
यत्र तीर्थान्यनेकानि विष्णुदेवकृतानि च ॥ ३७७ ॥

पाद्मे निर्वाणखण्डे--

परमानन्दकन्दाख्यं महापातकनाशनम् ।
समस्तदुःखसंहन्तृ जीवमात्रविमुक्तिदम् ॥ ३७८ ॥

श्री दशमस्कन्धे—

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ ३७९ ॥
वृन्दावनं सखि ! भुवो वितनोति कीर्त्तिं,
यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मी ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं,
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ ३८० ॥

वन अत्यन्त प्रिय है । श्रीमाधव, बलदेवजी के तथा सखागण के साथ वृन्दावन में विराजमान होकर बछड़े-गौ चराते हुए क्रीड़ा करते हैं । अहो श्रीवृन्दावन परम मनोहर है जहाँ गोवर्द्धन पर्वत बिराजमान तथा विष्णु भगवान से निर्म्मित असंख्य तीर्थ हैं ॥ पद्मपुराण के निर्बाणखंड में कहा है--परमानन्दकन्द रूप, महा-पातकों का नाशन. समस्त दुःख का हरण करने वाला तथा प्राणिमात्र को मुक्ति देने वाला श्रीवृन्दावन है । दशमस्कन्ध में भी कहा है कि नवीन वनों से युक्त, गोप-गोपी-गौओं के सेव्य, पुन्य पर्वत, तृण, लताओं से पूर्ण वृन्दावन नामक मनोहर बन है । ,,हे सखि ! श्रीवृन्दाबन पृथ्वी के यश को विस्तार कर रहा है । जो देवकी सुत श्रीकृष्ण के चरण-कमलों के चिह्नों से शोभा युक्त है । । जहाँ गोविन्द के वेणु शब्द का लक्ष्य करके मयूरगण मत्त होकर ध्वनि केसाथ नृत्य करते हैं जिन्हें पर्वत शिखरपर देखकर समस्त प्राणी परम निवृत्त अर्थात् परानन्द को प्राप्त होते हैं ।"

एतेन वृन्दावनस्य लोकप्रसिद्ध्या षोड़शक्रोशीविस्तारत्वं युक्तमेव।
श्रीदशमे श्रीशुकेनाप्युक्तम्—

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद्रामेण सह केशवः॥ ३८१॥

स चेति ग्रीष्म इत्यर्थः।

श्री गोविन्दवृन्दवनाख्ये वृहद्गौतमीये त्विदं दृश्यते--

तत्र श्रीनारदप्रश्नो यथा-

किमिदं द्वादशाभिख्यं वृन्दारण्यं विशाम्पते।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि योग्योऽस्मि मे वद॥ ३८२॥

तत्र श्रीकृष्णस्योत्तरम्--

इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्।
अत्र ये पशवः पक्षी वृक्षः कीटा नरामराः॥
ये वसन्ति ममाधिष्ठे मृता यान्ति ममालयम्॥ ३८३॥

इस लोक में प्रसिद्ध षोलह कोस बिस्तार श्रीवृन्दावन है यह युक्त है। दशम में श्री शुकदेवजी ने भी कहा है--वह ग्रीष्म ऋतु वृन्दावन के गुण प्रभाव से बसन्त ऋतु की भाँति लक्षित हो रहा है। जहाँ भगवान केशव, बलराम के साथ साक्षात् रूप में विराजमान हैं। श्रीगोविन्दवृन्दावन नामक वृहद्गौतम तन्त्र में ऐसा उल्लेख देखा गया है--उसमें नारदजी ने पूँछा-"हे महाराज! हे भगवन्! बारह संख्य से प्रसिद्ध यह क्या वस्तु है? मैं सुनना चाहता हूँ, यदि मैं योग्य हूँ तो मुझे कहिए।" इस पर श्रीकृष्ण का उत्तर यथा---यह परम मनोहर केवल मेरा धाम वृन्दावन है। यहाँ पशु, पक्षी, वृक्ष, कीट, नर, देवता जो भी कुछ वास करते हैं वे सब मृत्यु के पश्चात् मेरे भवन में गमन करते हैं यह मेरी अधिष्ठान भूमि है। यहाँ जो गोप कन्यकाएं निवास करती हैं वे सब परम योगिनी अर्थात् महा वैभवशालिनी है तथा मम भवन

अत्र या गोपकन्याश्च निवसन्ति ममालये ।
योगिन्यस्ता मया नित्यं मम सेवापरायणाः ॥ ३८४ ॥
पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी ॥ ३८५ ॥
अत्र देवाश्च भूतानि वर्त्तन्ते सूक्ष्मरूपतः ।
सर्वदेवमयश्चाहं न त्यजामि वनं क्वचित् ॥ ३८६ ॥
आविर्भावस्तिरोभावो भवेदत्र युगे युगे ॥
तेजोमयमिदं रम्यमदृश्यं चर्मचक्षुषा ॥ ३८७ ॥

तत्रस्थस्य गोविन्दस्य आदिवाराहे-

वृन्दावने तु गोविन्दं ये पश्यन्ति वसुन्धरे ।
न ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम् ॥३८८॥

स्कान्दे मथुराखण्डे श्रीनारदोक्तं-

तस्मिन् वृन्दावने पुण्यं गोविन्दस्य निकेतनम् ।
तत्सेवकसमाकीर्णं तत्रैव स्थीयते मया ॥३८९॥

में नित्य सेवापरायण होकर हमारे साथ रमण करती हैं। पञ्च-योजन परिमित यह वन मेरा देह रूप है तथा परम अमृत-वाहिनी यह कलिन्द-तनया यमुना मेरी सुषुम्ना नाड़ी रूपा है। यहाँ देवगण तथा भूत - समूह सूक्ष्म रूप में विराजमान हैं समस्त देवताओं के देवता मैं इस बन का त्याग कभी नहीं करता हूँ। कभी स्थिति कभी वा अनवस्थिति यह तो आविर्भाव, तिरोभाव रीति से जानना। युग-युग में मेरी ऐसी रीति होती रहती है। यह स्थान परम तेजोमय है जो चर्म-चक्षु से अदृश्य है ३७१-३८७ अब वृन्दावन में विराजमान गोविन्द का माहात्म्य वर्णन करते हैं–हे वसुधे ! जो मनुष्य वृन्दावन में गोविन्द का दर्शन करते हैं वे सब यमपुर को नहीं जाते हैं अधिक पुण्यकारियों की गति को प्राप्त होते हैं। स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में श्रीनारदजी ने

भुवि गोविन्दवैकुण्ठं तस्मिन् वृन्दावने नृप ।
यत्र वृन्दादयो भृत्याः सन्ति गोविन्दलालसाः ॥३६०॥
वृन्दावने महासद्म यैर्दृष्टं पुरुषोत्तमैः ।
गोविन्दस्य महीपाल ते कृतार्था महीतले ॥३६१॥

अथ श्रीगोविन्दतीर्थस्य-सौरपुराणे-

गोविन्दस्वामितीर्थाख्यमस्ति तीर्थं महोत्तमम् ।
वसुदेवतनूजस्य विष्णोरत्यन्तवल्लभम् ॥३६२॥
गोविन्दस्वामिनामात्र वसत्यर्च्चात्मकोऽच्युतः ।
तत्र स्नात्वा समभ्यर्च्च्य मुक्तिमिच्छन्ति साधवः ॥३६३॥

अथ ब्रह्मकुण्डस्य आदिवाराहे-

तत्र कुण्डे महाभागे ! बहुगुल्मलतावृते ।
अत्र स्नानं प्रकुर्वीत चतुःकालोषितो नरः ॥३६४॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च क्रीड़मानः स मोदते ।
अत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥३६५॥

कहा है-उस वृन्दावन में परम पवित्र गोविन्ददेव के मन्दिर है जो कि नृप ! उनके सेवकों से परिव्याप्त है । मैं तो वहाँ ही रहता हूँ । पृथिवी में गोविन्द वैकुण्ठ है, उसमें वृन्दावन है । जहाँ वृन्दादिक भृत्यवर्ग गोविन्द लालसा से वास करते हैं । जो पुरुष श्रेष्ठ वृन्दावन में गोविन्द के महान् मन्दिर का दर्शन करते हैं वे सब पृथिवी पर कृतार्थ माने जाते हैं ॥३५८-३६१॥

अब गोविन्दतीर्थ का माहात्म्य सौरपुराण में--वहाँ महान् उत्तम गोविन्दस्वामी नामक तीर्थ है, वह स्थान वसुदेवनन्दन श्रीविष्णु को अत्यन्त प्रियकर है । यहाँ श्रीअच्युत, गोविन्दस्वामी नाम से अर्चारूप में विराजमान हैं । साधुगण वहाँ स्नान तथा पूजा करके मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥३६२-३६३॥

अब ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य आदिवाराह में-हे महाभागे !

वाराहे—

तत्र कुण्डं महाभागे ! बहुगुल्मलतावृतम् ।
पूर्णमेव महातीर्थं सुरम्यसलिलावृतम् ॥३६६॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत चतुःकालोषितो नरः ।
मोदते विमले दिव्यगन्धर्वाणां कुले सुखम् ॥३६७॥
तत्रापि मुञ्चते प्राणान् सततं कृतनिश्चयः ।
गन्धर्वपुरमुत्सृज्य मम लोकं स गच्छति ॥३६८॥
तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि तत् शृणु त्वं वसुन्धरे ।
लभन्ते मनुजाः सिद्धिं मम कर्मपरायणाः ॥३६६॥
तस्य तत्रोत्तरे पार्श्वेऽशोकवृक्षः सितप्रभः ।
वैशाखस्य तु मासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशी ॥४००॥
स पुष्पति च मध्यान्हे मम भक्तसुखावहः ।
न कश्चिदपि जानाति विना भागवतं शुचिम् ॥४०१॥

वहुगुल्मलता से आवृत उस कुण्ड में मनुष्य चारि कालमें निवास पूर्वक स्नान करें । तब वह गन्धर्व-अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ प्रसन्नता प्राप्त करता है । अन्त में यहाँ प्राण त्याग के पश्चात् वह मेरे लोक में आता है ॥३६४-३६५॥

वाराहपुराण में कहा है–हे महाभागे ! वहाँ वहुगुल्म-लता से वेष्ठित कुण्ड है जो कि मनोहर सलिल से परिपूर्ण तीर्थ है । वहाँ चतुःकाल में रहकर यदि मनुष्य स्नान करता है तो वह दिव्य गन्धर्वों के मनोहर कुल में आमोद प्राप्त करता है । तो भी यदि निश्चित रूप से निरन्तर वहाँ वास कर प्राणत्याग करता है तो वह गन्धर्वलोक त्याग करके मेरे लोकको प्राप्त करता है । हे वसुन्धरे ! वहाँ एक आश्चर्य की बात है सो कहता हूँ सुनो, जिसको श्रवण कर मनुष्य सिद्धि प्राप्त तथा मत्कर्म परायण होते हैं ॥

उस कुण्ड के उत्तरमें अलक्षित रूप से शुभ्रकान्ति वाला एक

अथ केशीतीर्थस्य, आदिवाराहे-

गङ्गाशतगुणं पुण्यं यत्र केशी निपातितः ॥४०२॥
तत्रापि च विशेषोऽस्ति केशीतीर्थे वसुन्धरे।
तस्मिन् पिण्डप्रदानेन गयापिण्डफलं लभेत् ॥४०३॥

अथ कालियह्रदस्य, तत्रैव-

कालियस्य ह्रदं गत्वा क्रीडित्वा च वसुन्धरे।
स्नानमात्रेण तत्रैव सर्वपापैः प्रमुच्यते।
अथात्र मुच्यते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥४०४॥

श्रीदशमे--

योऽस्मिन स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः।
उपोष्य मां स्मरेन्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४०५॥

वाराहे--

कालियस्य ह्रदं पुण्यमस्ति गुह्यं परं मम।
यत्राहं क्रीडये नित्यं विमले यमुनाम्भसि ॥४०६॥

अशोकवृक्ष है। वैशाख मास शुक्लपक्ष द्वादशी के दिन वह प्रस्फुटित होता है। जो कि मेरे भक्तों के सुख का वहन करने वाला है। पवित्र भागवत जन के विना इस रहस्य को कोई नही जानता है ॥३९९-४०१॥

अब केशितीर्थ का माहात्म्य आदिवाराह में-जहाँ केशिदैत्य मर कर पड़ा था वह स्थान गंगा से सौ गुण पवित्र है। हे वसुन्धरे! तौ भी केशितीर्थ में विशेषता है। वहाँ पिण्डदान से गयापिण्ड फल मिलता है ॥४०२-४०३॥

अब कालियह्रद का माहात्म्य आदिवाराहमें वर्णित-हे वसुधे! कालियह्रद में जाकर श्रीकृष्ण ने विविध क्रीडा की, जहाँ मनुष्य स्नानमात्र से समस्त पापों से मुक्त होता है अनन्तर यहाँ प्राणत्याग करने पर मेरे लोक को गमन करता है। दशम में कहा है-

अत्राभिषेकं कुर्वीत अहोरात्रोषितो नरः ।
स तक्षकगृहं गत्वा नागकन्यासु मोदते ॥४०७॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् विमले यमुनाम्भसि ।
तक्षकस्य गृहं हित्वा मम लोके महीयते ॥४०८॥
तत्रापि महदाश्चर्यं पश्यन्ति पण्डिता नराः ।
कालियह्रदपूर्वेण कदम्बो महितो द्रुमः ।
शतशाखो विशालाक्षि पुण्यः सुरभिगन्धि च ॥४०९॥
स च द्वादशमासानि मनोज्ञः शुभशीतलः ।
पुष्पायति विशालाक्षि ! प्रभासन्ते दिशो दश ॥४१०॥

अथ सौरपुराणे-

तत्र कालियतीर्थाख्यं तीर्थमंहोविनाशनम् ।
अनृत्यद् यत्र भगवान् वालः कालियमस्तके ॥४११॥
तत्र यस्तु कृतस्नानो वासुदेवं समर्च्चयेत् ।
अगण्यजन्मदुष्प्राप्यं कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥४१२॥

जो मनुष्य मेरी क्रीड़ास्थली इस ह्रद में स्नान करके जल से देवताओं का तर्पण करता है तथा उपवास कर मेरा स्मरण करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होता है। बराहपुराण में कहा—परम पवित्र, गोपनीय मेरा यह कालियह्रद है जहाँ विमल यमुना जल में मैं निरन्तर क्रीड़ा करता हूँ। मनुष्य यहाँ अहोरात्र वास कर अभिषेक करें तो नागलोकमें सर्पराज गृहको जाकर नागकन्याओं के साथ प्रमोद प्राप्त करता है। कालियह्रदमें पण्डित लोग महान् आश्चर्य को देखते हैं। उस ह्रद के पूर्व में एक महान् कदम्ब वृक्ष विराजमान है। हे विशालाक्षि ! वह शतशाखा एवं परम पवित्र सुरभिगन्ध वाला है। मनोहर, शुभमय, शीतल वह वृक्षराज बारह महीना में प्रस्फुटित होकर दश दिशाओं को सुगन्धित करता है। सौरपुराण में कहा है—वहाँ पापविनाशन कालियतीर्थ नामक तीर्थ

अथ प्रस्कन्दनस्य, तत्रैव-

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तत् शृणु त्वं वसुन्धरे ।
क्षेत्रं प्रस्कन्दनं नाम सर्वपापहरं शुभम् ॥४१३॥
तस्मिन् स्नातस्तु मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अथात्र मुञ्चति प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥४१४॥

अथ द्वादशादित्यसंज्ञकस्य आदिवाराहे—

सूर्यतीर्थे नरः स्नातो दृष्ट्वादित्यं वसुन्धरे ।
आदित्यभवनं प्राप्य कृतकृत्यः स मोदते ॥४१५॥
आदित्येऽहनि संक्रान्तावस्मिंतीर्थे वसुन्धरे ।
मनसाभीप्सितं कामं संप्राप्नोति न संशयः ॥४१६॥

अथ सौरपुराणे-

द्वादशादित्यतीर्थाख्यं तीर्थं तदनु पावनम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण नृणामंहो विनश्यति ॥४१७॥

है। जहाँ बालरूपी भगवान् ने कालिय मस्तक में नृत्य किया था जो वहाँ स्नान कर वासुदेव की अर्च्चना करता है वह अनेक जन्म के दुष्पाप्य कृष्ण सामुज्य प्राप्त होता ॥४०४-४१२॥

अब प्रस्कन्दन तीर्थ का माहात्म्य आदिवाराह में-हे वसुन्धरे! फिर अन्य विषय कहता हूँ सुनो, समस्त पापनाशक प्रस्कन्दन नामक शुभ क्षेत्र है, वहाँ मनुष्य स्नान कर समस्त पापों से विमुक्त होता है तथा प्राणत्याग के उपरांत वह मेरे लोक को प्राप्त करता है ॥४१३-४१४॥

अनन्तर द्वादश आदित्य नामक तीर्थ का माहात्म्य आदिवाराह में-हे वसुन्धरे! मनुष्य सूर्यतीर्थ में स्नान कर आदित्योंका दर्शन करता है वह सूर्य भवन को प्राप्त कर कृतकृत्य हो वहाँ विनोद करता है। रविवार संक्रांति के दिवस इस तीर्थ में वह मन अभिलषित कामनाओं को प्राप्त करता है इसमें संशय नहीं है। सौर-

अथ यथोक्तक्रमं बनानां यात्रायाः कर्त्तव्यत्वोपदेशः,
आदिवाराहे-प्रथमं मधुवनं प्रोक्तं द्वादशं वृन्दकावनम् ।
एतानि ये प्रपश्यन्ति न ते नरकभोगिनः ॥४१८॥
यथाक्रमेण ये यात्रां बनानां द्वादशस्य तु ।
करिष्यन्ति वरारोहे यान्ति ते ब्रह्मणालयम् ॥४१६॥

अथ श्रीगोवर्द्धनस्य, तत्रैव—
अस्ति गोवर्द्धनं नाम क्षेत्रं परमदुर्ल्लभम् ।
मथुरापश्चिमे भागे अदूराद्‌योजनद्वयम् ॥४२०॥
अन्नकूटं ततः प्राप्य तस्य कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्देवि सत्यं ब्रवीमि ते ॥४२१॥
स्नात्वा मानसगङ्गायां दृष्ट्वा गोवर्द्धने हरिम् ।
अन्नकूटं परिक्रम्य किं मनः परितप्यसे ॥४२२॥

पुराण में कहा है-अनन्तर परम पावन द्वादशादित्य नामक तीर्थ है। उसके दर्शन मात्र से मनुष्यों का पाप नाश होजाता है ॥४१५-४१७॥

इस प्रकार वनों का क्रम कहा गया है, वनयात्रा इस उपदेश का पालन कर्त्तव्य है। आदिवाराह में कहा—पहले मधुवन से लेकर क्रम से द्वादश संख्या में वृन्दावन है। इन बारह वनों को जो दर्शन करते हैं वे नरकभागी नहीं रहते, जो यथा क्रमसे बाहर वन की यात्रा करेंगे वे ब्रह्मलोक की प्राप्ति अवश्य करेंगे ॥४१८-४१६॥

अनन्तर श्रीगोवर्द्धन की महिमा कहते हैं, आदिवाराह में कहा है-मथुरा से पश्चिम भाग दो योजन दूर पर परम दुर्लभ गोवर्द्धन नामक क्षेत्र है। हे देवि! अन्नकूट स्थान का दर्शन कर यदि उस गोवर्द्धन की प्रदक्षिणा की जाती है तब उस व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता, यह मेरा सत्य वचन है। मानसगंगा में स्नानकर गोवर्द्धन में हरि का दर्शन कर अन्नकूट की परिक्रमा करने पर फिर

इन्द्रस्य वर्षतोऽत्यर्थं गवां पीड़ाकरं जलम् ।
तासां संरक्षणार्थाय धृतो गिरिवरो मया ।
सोऽन्नकूट इति ख्यातः सर्वतः शक्रपूजितः ॥४२३॥
सोमवारे त्वमावस्यां प्राप्य गोवर्द्धने नरः ।
दत्वा पिण्डं पितृभ्यश्च राजसूयफलं लभेत् ॥४२४॥

स्कान्दे मथुराखण्डे-

गोवर्द्धनश्च भगवान् यत्र गोवर्द्धनो धृतः ।
रक्षिताः यादवाः सर्वे इन्द्रवृष्टिनिवारणात् ॥४२५॥
अहो गोवर्द्धनो विष्णुर्यत्र तिष्ठति सर्वदा ।
यत्र ब्रह्मा शिवो लक्ष्मीर्वसत्येव न संशयः ॥४२६॥
अस्ति गोवर्द्धनं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम ।
अदूरादष्टक्रोशात्तु मथुरायाश्च पश्चिमे ॥४२७॥
तत्रापि महदाश्चर्यं यत् पश्यन्ति सुचेतसः ।
तस्मिन् संवर्त्तते भूमि सर्वभागवतप्रियम् ॥४२८॥

मनः पीड़ा नहीं रहती । इन्द्र ने गौओं को पीड़ा देने को जल की वर्षा की तथा उनकी रक्षाके लिये मैंने गोवर्द्धन को धारण किया था । वह स्थान इन्द्र पूजित, सर्व्वत्र अन्नकूट इस नामसे ख्यात है । सोमवार अमावस्या के दिवस मनुष्य गोवर्द्धन में जाकर यदि पितरों को पिण्डदान करता है तो वह राजसूय यज्ञका फल लाभ करता है ॥४२०-४२४॥

स्कन्दपुराण के मथुराखण्ड में कहा-गोपालक भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन को धारणकर जहाँ समस्त ब्रजवासियों की इन्द्रवृष्टि निराकरणके द्वारा रक्षा की, अहो ! गोपालक श्रीहरि जहाँ सर्वदा विराजमान हैं, जहाँ ब्रह्मा, शिवजी, लक्ष्मीजी, निवास करते हैं इसमें कोई संशय नहीं है । गोवर्द्धन नामक मेरा परम गुह्य तीर्थ है जो मथुरा से पश्चिम आठ कोस दूर पर है । हे भूमि उसमें

चतुर्विंशति द्वादश्यां तस्मिन् शिखरपर्वते ।
स्थूलान् पश्यन्ति दीपान् वै भासयन्तो दिशो दश ॥४२९॥
यश्च तान् पश्यते दीपान् मम कार्य्यपरायण: ।
लभते परमां सिद्धिमेवमेतन्न संशय: ॥४३०॥

अथ श्रीदशमे—

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्य्यो,
यद्रामकृष्णचरणस्पर्श प्रमोद: ।
मानं तनोति सह गोगणयोस्तयोर्यत्,
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलै: ॥४३१॥

भाद्रे कटिपरिवर्त्तिन्यां गोवर्द्धनयात्रा, आदिवाराहे—

मासि भाद्रपदे या तु शुक्ला चैकादशी शुभा ।
गोवर्द्धने सोपवास: कुर्य्यात्तस्य प्रदक्षिणम् ॥४३२॥

एक महान आश्चर्य की बात जो है सुनो, जिसका दर्शन केवल सुमेधा भाग्यवान जन करते हैं । समस्त भागवतजन के प्रिय उस गोवर्द्धन पर्व्वत में चौबीसों द्वादशी तिथियों में शिखरमें स्थूलाकार प्रदीप समूह दशों दिशाओं को प्रकाशमान करता हुआ भासमान होता है । मत्सेवा-परायण जो जन उन दीपों का दर्शन करता है वह परम सिद्धि को लाभ करता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥४२५-४३०॥

श्री दशमस्कन्ध में कहा है—हे अबला ! यह पर्वत निश्चय हरिदासों में श्रेष्ठतम है क्योंकि जो रामकृष्ण के चरण स्पर्श से प्रमोदित रहता है । जो पानीयजल, कोमल तृण, गुहा, कन्दमूलादिकों से गो गण के साथ उन रामकृष्ण की सेवा कर सौख्य विधान कर रहा है ॥४३१॥

भाद्र मास कटि-परिवर्तन दिवस गोवर्द्धन की यात्रा विधि है, आदिवाराह में कहा है-भाद्रमास शुभ शुक्ला एकादशी के दिवस

गोवर्द्धनं परिक्रामन् दृष्ट्वा देवं हरिं प्रियम् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥३३३॥

तत्रस्थब्रह्मकुण्डस्य, मथुराखण्डे-

तत्र जातं ब्रह्मकुण्डं ब्रह्मणा तोषितो हरिः ।
इन्द्रादिलोकपालनां जातानि च सरांसि हि ॥४३४॥

आदिवाराहे —

इदं तत्र महाभागे द्रुमगुल्मलतायुतम् ।
चत्वारि तत्र तीर्थानि पुण्यानि च शुभानि च ॥४३५॥
ऐन्द्रं पूर्वेण पार्श्वेन यमतीर्थन्तु दक्षिणे ।
वारुणं पश्चिमे तीर्थं कौबेरं चोत्तरेण तु ।
तत्र मध्ये स्थितश्चाहं क्रीडयिष्ये यदृच्छया ॥४३६॥

अथ श्रीगोविन्दकुण्डस्य, मथुराखण्डे-

यत्राभिषिक्तो भगवान् मघोना यदुवैरिणा ।
गोविन्दकुण्डं तज्जातं स्नानमात्रेण मोक्षदम् ॥४३७॥

गोवर्द्धन में उपवास रह कर प्रदक्षिणा करें। प्रदक्षिणा के उपरान्त हरिदेव भगवान के दर्शन करने पर राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है इसमें कोई संदेह नही है ॥४३२-४३३॥ गोवर्द्धनस्थ ब्रह्मकुण्ड की महिमा मथुरा खण्ड में-ब्रह्मा के द्वारा श्रीहरि प्रसन्न हुए, वहाँ ब्रह्मकुण्ड की उत्पत्ति हुई तथा इन्द्रादि लोकपाल देवताओं के भी कुण्ड समूह उत्पन्न हुए। आदिवाराह में कहा है-हे महाभागे ! वहाँ वृक्ष-लताओं से परिवेष्ठित ब्रह्महृद विराजमान है, वहाँ और भी चारि शुभमय पवित्रकारक तीर्थ मौजूद हैं, पूर्व भाग में ऐन्द्र तीर्थ, दक्षिण में यम तीर्थ, पश्चिम में वरुणतीर्थ, उत्तर में कुबेरतीर्थ, हैं। मैं उनके बीच में विराजमान होकर यदृच्छा क्रीड़ा करता रहता हूँ॥४३४-४३६॥

अन्नकूटस्य सान्निध्ये तीर्थं शक्रविनिर्म्मितम् ।
तस्मिन् स्नाने तर्पणे च शतक्रतुफलं लभेत् ॥४३८॥

अथ श्रीराधाकुण्डादिकस्य, आदिवाराहे—

अरिष्टराधाकुण्डाभ्यां स्नानात् फलमवाप्यते ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां नात्र कार्य्या विचारणा ॥४३९॥

तथा मथुराखण्डे-

दीपोत्सवे कार्तिके च राधाकुण्डे युधिष्ठिर ! ।
दृश्यते सकलं विश्वं भृत्यैर्विष्णुपरायणैः ॥४४०॥

अथ पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये पातालखण्डे-

गोवर्द्धनगिरौ रम्ये राधाकुण्डं प्रियं हरेः ।
कार्त्तिके बहुलाष्टम्यां तत्र स्नात्वा हरेः प्रियः ॥
नरो भक्तो भवेद्विप्रास्तद्धि तस्य प्रतोषणम् ॥४४१॥

अब गोविन्दकुण्ड के माहात्म्य मथुराखण्ड में–जहाँ यादवों के बैरकारी इन्द्र के द्वारा भगवान अभिषिक्त हुए उससे वहाँ गोविन्दकुण्ड की उत्पत्ति हुई, जो कि स्नानमात्रसे मोक्ष को देने वाला है । अन्नकूट के निकट इन्द्र के द्वारा विनिर्मित यह तीर्थराज है, वहाँ स्नान एवं तर्पण करने पर शत यज्ञ फल लाभ होता है । ॥४३७-४३८॥

अब राधाकुण्डादि के माहात्म्य आदिवाराह में-अरिष्ट (श्यामकुण्ड) राधाकुण्ड में स्नान से राजसूय, अश्वमेध का फल प्राप्त होता है इसमें किसी कार्य्य का विचार नहीं है ॥ मथुराखण्ड में कहा है–हे युधिष्ठिर ! दीपोत्सव पर कार्त्तिक में राधाकुण्ड के बीच विष्णु परायण भृत्यवर्ग के द्वारा समस्त विश्व दिखता है ॥ अनन्तर पद्मपुराण के कार्त्तिक माहात्म्य पातालखण्ड में कथन है कि मनोहर गोवर्द्धन पर्वत के तट पर श्रीहरि के प्रिय राधाकुंड विराजमान है । कार्त्तिक में बहुलाष्टमी तिथि पर वहाँ स्नान

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥ ४४२ ॥
तत्कुण्डे कार्त्तिकाष्टम्यां स्नात्वा पूज्यो जनार्द्दनः ।
प्रबोधन्यां यथा प्रीतस्तथा प्रीतस्ततो भवेत् ॥ ४४३ ॥

अथाक्रूरतीर्थस्य सौरपुराणे-

अनन्तरमतिश्रेष्ठं सर्वपापविनाशनम् ।
अक्रूरतीर्थमत्यर्थमस्ति प्रियतमं हरेः ॥ ४४४ ॥
पूर्णिमायान्तु यः स्नायात्तत्रतीर्थवरे नरः ।
स मुक्त एव संसारात् कार्त्तिक्यान्तु विशेषतः ॥ ४४५ ॥

आदिवाराहे—

तीर्थराजं हि चाक्रूरं गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
तत्फलं समवाप्नोति सर्वतीर्थावगाहनात् ॥ ४४६ ॥
अक्रूरे च पुनः स्नात्वा राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ४४७ ॥

करने पर मनुष्य हरि का प्रिय होता है । भगवत् प्रतोषण का यह परम उपाय है ॥ ४३६-४४१ ॥
जिस प्रकार श्रीराधिका विष्णु की परम प्रिया है है तथा समस्त गोपियों में एक मात्र सेव्या है ठीक उसी प्रकार राधाकुण्ड राधिका का परम प्रिय है । उस कुण्ड में कार्त्तिक वहुलाष्टमी में स्नान करने पर जनार्द्दन जिस प्रकार प्रवोधिनी तिथि में प्रसन्न होते हैं उस प्रकार उसकी श्रीहरि में प्रीति होती है ॥ ४४२-४४३
अब अक्रूरतीर्थ के माहात्म्य सौरपुराण में—अनन्तर अतिश्रेष्ठ, समस्त पाप विनाशन, श्रीहरि के परमप्रिय अक्रूर तीर्थराज है । जो उस तीर्थश्रेष्ठ में पूर्णिमा के दिवस विशेष करके कार्त्तिक में स्नान करता है वह संसार से मुक्त हो जाता है । आदिवाराह में कहा है-गुह्यों के गुह्य उत्तम तीर्थराज अक्रूरतीर्थ है । समस्त

अथ भाण्डागारस्य वाराहे--

भाण्डागारमितिख्यातं गुह्यमस्ति ततो मम ।
लभन्ते मनुजा भूमि सिद्धिं तत्र न संशयः ।। ४४८ ।।
तत्र कुण्डं महाभागे द्रुमगुल्मलतावृतम् ।
तत्र स्नानं प्रकुर्व्वीत अहोरात्रोषितो नरः ।। ४४९ ।।
लोकं विद्याधरं गत्वा मोदते कृतनिश्चयः ।
तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि भूमि ! गुह्यं परं मम ।। ४५० ।।
चतुर्विंशति द्वादश्यां मम भक्तिव्यवथिताः ।
अर्द्धरात्रिषु शृण्वन्ति गीतं कर्णसुखावहम् ।। ४५१ ।।

अथ श्रीनन्दीश्वरस्य, श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे —

पुण्यावत व्रजभुवो यदयं नृलिंगो,
गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं
विक्रीडयाञ्चति गिरित्ररमार्च्चिताङ्घ्रिः ।। ४५२ ।।

तीर्थों के अवगाहन से जो फल मिलता है वह फल वहाँ प्राप्त है। मनुष्य ग्रहण के दिवस अक्रूर में स्नान करने पर राजसूय, अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ।। ४४४-४४७ ।।

अब भाण्डागार तीर्थ का माहात्म्य वाराह में--अनन्तर भाण्डागार नाम से ख्यात मेरे परम गुह्य स्थल है । हे भूमि ! वहाँ मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है । हे महाभागे ! वहाँ वृक्षलता तथा गुल्मों से युक्त मनोहर कुण्ड है । वहाँ मनुष्य को चाहिए स्नान करके अहोरात्र निवास करें । उस से वह विद्याधर लोक में जाकर आनन्द प्राप्त करता है ऐसा निश्चय किया गया है । हे भूमि ! वहाँ एक गोपनीय आश्चर्य बात बीतती है उसे कहता हूँ । मुझमें भक्ति करने वाले एकांती जन चौबीस द्वादशी तिथियों में अर्द्धरात्रि पर कर्णसुखावह गान सुनते हैं ।। ४४८-४५१ ।।

तथा च पठन्ति--

पावने सरसि स्नात्वा कृष्णं नन्दीश्वरे गिरौ ।
दृष्ट्वा नन्दं यशोदाञ्च सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥ ४५३ ॥

अथ शकटारोहणस्य आदिवाराहे--

शकटारोहणं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
मथुरापश्चिमे भागे अदूरादर्द्ध योजने ॥ ४५४ ॥
अनेकानि सहस्राणि भ्रमराणां वसन्ति वै ।
तत्राभिषेकं कुर्व्वीत एकरात्रोषितो नरः ॥ ४५५ ॥
स तु वैद्याधरं लोकं गत्वा तु बसते सुखम् ।
तत्रापि महदाश्चर्यं पश्यन्ति पथि संस्थिताः ॥
सर्वपुष्पवरं कुन्दं माघमासे तु द्वादशी ॥ ४५६ ॥

अथ ग्रहण स्नानाद्यर्थं केषुचित्तीर्थेषु कुरुक्षेत्रत्वातिदेशः,
तत्रैवादिवाराहे--

गोवर्द्धनं तथाक्रूरं द्वे कोटी दक्षिणोत्तरे ।
प्रस्कन्दनञ्च भांडीरं कुरुक्षेत्रसमानि षट् ॥ ४५७ ॥

यह मनुष्य वपुधारी, गूढ़, आदिपुरुष श्रीकृष्ण वनों के विचित्र माल्यों से विभूषित होकर श्रीबलदेव के साथ गोचारण करते हुए वेणुवादन पूर्व्वक क्रीड़ा-बिहार करते हैं । जो आप शिव-लक्ष्मी के द्वारा अर्च्चित हैं ॥ महानुभावगण गान करते कि—पावन सरोवर में स्नान कर नन्दीश्वर पर्वत में विराजमान श्रीकृष्ण, नन्द तथा यशोदा का दर्शन करने पर सर्वाभीष्ट प्राप्त होता है ॥ ४५२-४५३ ॥

अब शकटारोहण स्थान के माहात्म्य आदिवाराह में—उस क्षेत्र में मथुरा के पश्चिम आधा योजन दूर पर मेरा परम प्रिय शकटारोहण नामक स्थान है । वहाँ बहुत (हजारों संख्या में) भ्रमरगण निवास करते हैं । वहाँ मनुष्य एक रात्रि निवास कर अभिषेक करें । उससे वह विद्याधर लोक में जाकर आनन्द प्राप्त करता है । वहाँ एक महान आश्चर्य ...

अथ यथार्थकथनं तत्रैव—

असिकुण्डञ्च वैकुण्ठं कोटितीर्थोत्तमं तथा ।
अविमुक्तं सोमतीर्थं यमनं तिन्दुकं तथा ॥ ४५८ ॥
चक्रतीर्थं तथाक्रूरं द्वादशादित्यसंज्ञकम् ।
एते पुण्याः पवित्राश्च महापातकनाशनाः ॥ ४५ ॥
कुरुक्षेत्राच्छतगुणा मथुरायां न सशयः ।
ये पठन्ति महाभागे ! शृण्वन्ति च समाहिताः ॥ ४६० ॥
मथुरायाश्च माहात्म्यं ते यान्ति परमां गतिम् ।
कुलानि ते तारयन्ति द्वे शते पक्षयोर्द्वयोः ॥
माहात्म्यश्रवणादेव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ४६१ ॥

अथमाथुरमहातीर्थानि—

विश्रान्तिरसिकुण्डश्च वैकुण्ठो ध्रुव एव च ।
कृष्णगङ्गा चक्रतीर्थं सरस्वत्याश्च संगमः ॥ ४६२ ॥

श्रेष्ठ कुन्द पुष्प का दर्शन करते हैं ॥ ४५४-४५६ ॥

अब ग्रहण तिथि में जिन-जिन तीर्थों में स्नान करने पर कुरुक्षेत्र-स्नान फल होता है, उन्हें कहते हैं। यह फल कथन अतिदेश विधि है। गोवर्द्धन, अक्रूरघाट, दक्षिणकोटि, उत्तरकोटि, प्रस्कन्दन तथा भाण्डीर ये छः कुरुक्षेत्र समान फल देने वाले हैं। ४५७ ॥

आदिवाराह में यथार्थ कथन यह है—असिकुण्ड, बैकुण्ठ, उत्तम-कोटितीर्थ, अविमुक्त, सोमतीर्थ, संयमन, तिन्दुक, चक्रतीर्थ, अक्रूर, द्वादशादित्यतीर्थ ये सब परम पवित्र, महापातक नाश करने वाले हैं। कुरुक्षेत्र से शत गुण अधिक महिमा वाले मथुरा में ये सब तीर्थ हैं। जो महा भाग्यवान मथुरा के माहात्म्य निविष्ट चित्त से पठन तथा श्रवण करते हैं वे परमगति को प्राप्त होते हैं। दोनों पक्ष में मथुरा माहात्म्य श्रवण मात्र से वे दो सौ कुलको उद्धार करते हैं, इसमें कोई विचार अर्थात् संशय नहीं हो सकता है ॥ ४५८-४६१ ॥

चतुः सामुद्रिकः कूपो गोकर्णाख्यः शिवस्तथा ।
गोवर्द्धनो नन्दगेहं वत्सक्रीड़नकं तथा ।
वनानि द्वादश तथा महातीर्थानि माथुरे ।। ४६३ ।।

अथ माथुरदेववराः—

नारायणान्यपर्य्यायः केशवो मध्यसंस्थितः ।
स्वयम्भूः पद्मनाभश्च दीर्घविष्णुर्गतश्रमः ।
गोविन्दो हरिवराहाविति माथुरदेवताः ।।४६४ ।।
मथुरायास्तु माहात्म्यं शरणाय महाद्भुतम् ।। ४६५ ।।
गोपालोत्तरतापन्यामन्यदप्यस्ति कीत्तितम् ।
तीर्थान्युक्तानि भूरीणि पुराणेष्वत्र माथुरे ।।
ख्यातान्येवाधुना तेषु लिखितानीह कानिचित् ।। ४६६ ।।
अमुना यमुना सख्या मथुराया मधूद्वहः ।
माहात्म्य-संग्रहेणाद्य मुदमापद्यतां मयि ।। ४६७ ।।

इति श्री श्री रूपगोस्वामिविरचित मथुरामाहात्म्यम्
।। सम्पूर्णम् ।।

वैकुण्ठ, ध्रुवतीर्थ, कृष्णगङ्गा, चक्रतीर्थ, सरस्वतिसङ्गम, चतुः-सामुद्रिक, गोकर्णशिव, गोवर्द्धन, नन्दीश्वर तथा वत्सक्रीड़नक हैं । द्वादश वन भी महातीर्थ माने जाते हैं ।। ४६२-४६३ ।
अब मथुरामण्डल में श्रेष्ठ देवताओं की संज्ञा—नारायण,(केशव) स्वयम्भू, पद्मनाभ, दीर्घविष्णु, गतश्रम, गोविन्द, हरि, आदि-वाराह ये मथुरामण्डल के देवता हैं ।। ४६४ ।।
मथुरा के माहात्म्य स्मरण के लिए अत्यन्त अद्भुत है । गोपालोत्तरतापनि में तथा अन्यत्र कीर्त्तन किया गया है । पुराणों में मथुरा में बहु तीर्थों का वर्णन है । वे सब प्रसिद्ध हैं । मैंने उनमें से किसी-किसी का उल्लेख किया हे उससे अर्थात् यमुना सखी

सानुवाद संस्कृत भाषा में–

१. अर्च्चाविधिः (संगृहीत) ।)
२. प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीजीकृत) ।)
३. भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता) १)
४. गोवर्द्धनशतक (श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्यं कृत) ।)
५. चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वतीजी कृत) १।)
६. नित्यक्रियापद्धतिः (संगृहीत) ।।=)
७. ब्रजभक्तिविलासः (श्रीनारायणभट्टजी कृतः) २।।)
८. निकुञ्जरहस्यस्तवः (श्रीमद्रूपगोस्वामी कृत)
९. महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता) ।–)
१०. स्मरणमङ्गलस्तोत्रं (श्रीमद्रूपगोस्वामिजीकृत) ।।=)
११. नवरत्नं (श्रीहरिरामव्यासजी कृत) =)।
१२. श्रीगोविन्दभाष्यं (श्रीपादबलदेवजी कृत) ४।।)
१३. ग्रन्थरत्नपञ्चकम् १।।)
(१) श्रीकृष्णलीलास्तवः (श्रीपादसनातनगोस्वामि कृतः)
(२) राधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्री श्रीरूपगोस्वामिजी कृता)
(३) श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्णपूरजी कृता)
(४) श्रीब्रजविलासस्तवः (श्री श्रीरघुनाथदासगोस्वामिजी कृत)
(५) श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी कृत)
१४. श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सञ्चित)
१५. ग्रन्थरत्नषट्कम् (सञ्चित) ।।)
१६. श्रीगोवर्द्धनभट्टग्रन्थावली
१७. सहस्रनामत्रयम् अथवा ग्रन्थरत्ननवकम्
१८. श्रीनारायणभट्टचरितामृतम् (श्रीजानकीप्रसादगोस्वामि-कृत) ।।)
१९. उद्धवसन्देशः (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः) ।=)
२०. हंसदूतम् (श्रीमद्रूपगोस्वामि विरचितम्) २।।)
२१. [illegible] (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्) ।।=)

गौड़ीयग्रन्थगौरव:—

ब्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

१.	गदाधरभट्टजी की वाणी		अप्राप्य
२.	सूरदासमदनमोहनजी की वाणी		,,
३.	माधुरीवाणी	(माधुरीजी कृता)	॥=॥
४.	बल्लभरसिकजी की वाणी		।=)
५.	गीतगोविन्दपद	(श्रीरामरायजी कृत)	।)
६.	गीतगोविन्द	(रसजानिवैष्णवदासजी कृत)	।)
७.	हरिलीला	(ब्रह्मगोपालजी कृता)	=)
८.	श्रीचैतन्यचरितामृत	(श्रीसुबलश्यामजी कृत)	४॥)
९.	वैष्णववन्दना (भक्तनामावली)	(वृन्दावनदासजी कृता)	=)
१०.	विज्ञापकुसुमाञ्जलि	(वृन्दावनदासजी कृता)	।)
११.	प्रेमभक्तिचन्द्रिका	(वृन्दावनदासजी कृता)	।)
१२.	प्रियादासजी की ग्रन्थावली		।=)
१३.	गौराङ्गभूषणमञ्जावली	(गौरगनदासजी कृता)	।)
१४.	राधारमणरससागर	(मनोहरजी कृता)	।)
१५.	श्रीरामहरिग्रन्थावली	(श्रीरामहरिजी कृता)	।–)
१६.	भाषाभागवत (दशम एकादश, द्वादश)	(श्रीरसजानिवैष्णवदासजी कृत)	
१७.	श्रीनरोत्तमठाकुरमहाशय की प्रार्थना		॥)
१८.	सम्प्रदायबोधनी	(कविवरमनोहरजी कृता)	
१९.	ब्रजमण्डलदर्शन	(परिक्रमा)	१)

पुस्तक मिलने का तथा वी० पी० भेजने का पता—

(१) श्री राधेश्याम गुप्ता, बुकसेलर

पुराना शहर, वृन्दावन।

मुद्रक—रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।